शिक्षाप्रद शास्त्रीय उदाहरण

लेखक--
पं० जुगलकिशोर मुख्तार,
सरसावा (सहारनपुर)

प्रकाशक--
जौहरीमल जैनी सर्राफ
दरीबा कलां देहली।

* वन्दे जिनवरम् *

श्रीमान् दिगम्बर जैन पंचान, देहली

जय जिनेन्द्र !

श्रीमान् की सेवा में १ प्रति शिक्षाप्रद शास्त्रीय उदाहरण अवलोकनार्थ प्रेषित है कृपया इसे आद्योपान्त पढकर जैसी भी आपकी सम्मति हो प्रगट करनेकी कृपा करें, कष्टके लिये क्षमा ।

प्रार्थी—

जौहरीमल



शिक्षाप्रद शास्त्रीय उदाहरण।

"श्रीनेमिनाथ तीर्थंकरके चचा और श्रीकृष्ण महाराजके पिता वसुदेवजी जैनसमाज में एक सुप्रसिद्ध व्यक्ति होगये हैं। हरिवंशपुराणादि जैनकथाग्रन्थोंमें आपका विस्तार के साथ वर्णन दिया है। यहां पर हम आपके जीवनकी सिर्फ चार घटनाओंका उल्लेख करते हैं; एक 'देवकीसे विवाह' दूसरी 'जरा नामकी म्लेच्छ कन्या से विवाह' तीसरी 'प्रियंगुसुन्दरीसे विवाह,' और चौथी घटना 'रोहिणी का स्वयंवर'।

१—देवकीसे विवाह।

देवकी राजा उग्रसेनकी पुत्री नृप भोजकवृष्टिकी पौत्री और महाराजा सुवीरकी प्रपौत्री थी। वसुदेव राजा अन्धकवृष्टिके पुत्र और नृप शूरके पौत्र थे। ये नृप 'शूर' और देवकीके प्रपितामह 'सुवीर' दोनों सगे भाई थे। दोनोंके पिताका नाम 'नरपति' और प्रपितामह (बाबा) का नाम 'यदु' था। ऐसा श्रीजिनसेना-

चार्य्य ने अपने हरिवंशपुराणमें सूचित किया है और इससे यह प्रकट है कि राजा उग्रसेन और वसुदेवजी दोनों आपसमें चचा-ताऊ जाद भाई लगते थे और इसलिये उग्रसेनकी लड़की 'देवकी' रिश्तेमें वसुदेवकी भतीजी (भ्रातृजा) हुई। इस देवकीसे वसुदेव का विवाह हुआ जिससे स्पष्ट है कि इस विवाहमें गोत्र तथा गोत्र की शाखाओंका टालना तो दूर रहा एक वंश और एक कुटुम्बका भी कुछ खयाल नहीं रक्खा गया। वसुदेवजीने गोत्रादि सम्बन्धी इन सब बातोंको कुछ भी महत्व न देकर, बिना किसी संकोचके अपनी भतीजीके साथ विवाह कर लिया और उनका यह विवाह उस समय कुछ भी अनुचित नहीं समझा गया। इस विवाहसे अनेक सुप्रतिष्ठित और बहुमान्य पुत्ररत्नोंका उद्भव हुआ; अर्थात् देवकीने श्रीकृष्णके अतिरिक्त छः तद्भवमोक्षगामी पुत्रोंको भी जन्म दिया। यह तो हुई देवकीसे विवाहकी बात, अब जराकी विवाह वार्ताको लीजिये।

२—जरासे विवाह।

जरा किसी म्लेच्छ राजाकी कन्या थी जिसने गङ्गा तट पर वसुदेवजीको परिभ्रमण करते हुए देखकर उनके साथ अपनी इस कन्याका पाणिग्रहण कर दिया था। पं० दौलतरामजीने; अपने

हरिवंशपुराणमें, इस राजा को 'म्लेच्छखण्डका राजा' बतलाया है और पं० गजाधरलालजी उसे 'भीलोंका राजा' सूचित करते हैं। वह राजा म्लेच्छखण्डका राजा हो या आर्य्यखण्डोद्भव म्लेच्छ राजा, और चाहे उसे भीलों का राजा कहिये, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वह आर्य्य तथा उच्चजातिका मनुष्य नहींथा। और इसलिये उसे अनार्य्य तथा म्लेच्छ कहना कुछ भी अनुचित नहीं होगा। म्लेच्छोंका आचार आम तौरपर, हिंसामें रति, मांसभक्षण में प्रीति और जबरदस्ती दूसरोंकी धन-सम्पत्तिका हरना इत्यादिक' होना है ; जैसा कि श्रीजिनसेनाचार्य्य-प्रणीत आदिपुराणके निम्नलिखित वाक्यसे प्रगट है :—

म्लेच्छाचारो हि हिंसायां रतिर्मांसाशनेऽपि च ।
बलात्परस्वहरणं निर्धूतत्वमिति स्मृतम् ॥ ४२-१८४ ॥

वसुदेवजी ने, यह सबकुछ जानते हुए भी, बिना किसी झिझक और रुकावटके बड़ी खुशीके साथ इस म्लेच्छ राजाकी उक्त कन्यासे विवाह किया और उनका यह विवाह भी उस समय कुछ अनुचित नहीं समझा गया। बल्कि उस समय और उससे पहिले भी इस प्रकारके विवाहोंका आम दस्तूर था। अच्छे अच्छे प्रतिष्ठित, उच्चकुलीन और उत्तमोत्तम पुरुषोंने म्लेच्छ राजाओंकी

कन्याओंसे विवाह किया, जिनके उदाहरणोंसे जैनसाहित्य परिपूर्ण है। अस्तु, इस विवाहसे वसुदेवजीके 'जरत्कुमार' नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो बड़ा ही प्रतापी, नीतिवान और प्रजाप्रिय राजा होगया है और जिसने अन्त को, राज पाट छोड़ कर जैन-मुनिदीक्षा तक धारण की थी। इसी राजाके वंशमे 'जितशत्रु' नामका राजा हुआ, जिससे भगवान महावीर के पिताकी छोटी बहिन व्याही गई। अब प्रियंगुसुन्दरीके विवाहको लीजिये।

३—प्रियंगुसुन्दरिसे विवाह।

प्रियंगुसुन्दरीके पिताका नाम 'एणीपुत्र' था। यह एणीपुत्र ऋषिदत्ता नामकी एक अविवाहिता तापसकन्यासे व्यभिचार द्वारा उत्पन्न हुआ था। प्रसवसमय उक्त ऋषिदत्ताका देहान्त हो गया और वह मरकर देवी हुई, जिसने एणी अर्थात् हरिणीका रूप धारण करके जङ्गलमें अपने इस नवजात शिशुको स्तन्यपानादिसे पाला और पालपोषकर अन्तको शीलायुध राजाके सुपुर्द कर दिया। इस प्रियंगुसुन्दरीका पिता एणीपुत्र 'व्यभिचारजात' था, जिसको आजकलकी भाषामें 'दस्सा' या 'गाटा' भी कहना चाहिये। वसुदेवजीने विवाहके समय यह सब हाल जानकर भी इस विवाहको किसी प्रकारसे दूषित, अनुचित अथवा अशास्त्र-

समझने* नहीं समझा और इसलिये उन्होंने बड़ी खुशीके साथ प्रियंगुसुन्दरीका भी पाणिग्रहण किया।

यद्यपि ये तीनों विवाह आजकलकी हवाके बहुत कुछ प्रतिकूल पाये जाते हैं तो भी, उस समय, इन विवाहोंको करके वसुदेवजी जरा भी पतित नहीं हुए।

पतित होना अथवा जातिसे च्युत किया जाना तो दूर रहा, तत्कालीन समाजने उन्हें घृणाकी दृष्टि से भी नहीं देखा। उनकी कीर्त्ति और प्रतिष्ठामें इन विवाहोंसे जराभी बट्टा या कलङ्क नहीं लगा; बल्कि वह उलटी वृद्धिगत हुई और यहां तक बनी रही कि उसके कारण आज तक भी अनेक ऋषि-मुनियों तथा विद्वानोंके द्वारा वसुदेवजीके पुण्य चरित्रका चित्रण और यशोगान होता

---

*शास्त्रोंमें तो ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्यके लिये 'शूद्र' तककी कन्यासे विवाह करना भी उचित ठहराया है, यथाः—

शूद्रा शूद्रेण वोढव्या नान्या स्वां तां च नैगमः।
वहेत्स्वां ते च राजन्यः स्वां द्विजन्मा क्वचिच्च ताः॥
—आदिपुराण।

'आनुलोम्येन चतुस्त्रिद्विवर्णकन्याभाजना ब्राह्मणक्षत्रियविशः।'
नीतिवाक्यामृत।

कहा। श्रीजिनसेनाचार्यने हरिवंशपुराणमें, वसुदेवजीकी कीर्तिका अनेक प्रकारसे कीर्तन कर उन्हें यदुवंशमें श्रेष्ठ, उदारचरित्र, शुद्धात्मा, स्वभाव से ही निर्मल चित्तके धारक, अनन्य साधारण, (जो औरोंमें न पाया जाय) विवेकसे युक्त और ऐसे महान् धर्मज्ञ तथा तत्त्ववेत्ता प्रकट किया है कि जिनके-मुनि और श्रावकधर्म-सम्बंधी उपदेशको सुनकर बहुतसे मिथ्यामती तापसियोंने भी तत्काल ही अपना वह मिथ्यामत छोड़ दिया था और जैनधर्मका शरण लेकर उसके व्रतोंको ग्रहण किया था। श्रीजिनदास ब्रह्मचारी भी, अपने हरिवंश पुराणमें, वसुदेवजीका ऐसा ही यशोगान करते हैं और उन्हें 'महामति' आदिक लिखते हैं। साथ ही, उन्होंने बलभद्रके मुखसे श्रीकृष्णके प्रति जो वाक्य कहलाया है उससे मालूम होता है कि वसुदेवजीका सौभाग्य जगत्में विख्यात था और उनकी सत्कीर्तिको खेचर और भूचर सभी जन गान किया करते थे। वह वाक्य इस प्रकार है:—

> जगद्विख्यातसौभाग्यो वसुदेवः पिता तव।
> गीयते यस्य सत्कीर्त्तिः खेचरीभूचरीजनैः॥
>
> सर्ग १४ श्लोक १४३।

इन दोनों ग्रन्थोंके अवतरणोंसे ही इस बातका भले प्रकार

पता चल जाता है कि वसुदेवजी कितने यशस्वी, विवेकी, प्रखर विद्वान् और धार्मिक पुरुष थे। ऐसी हालतमें उनके यह तीनों विवाह उस समय की दृष्टिसे जरा भी हीन अथवा जघन्य नहीं समझे जा सकते। उन्हें अनुचित समझना ही अनुचित होगा। अस्तु; अब रोहिणी के स्वयंवरकी ओर चलिये।

४–रोहिणीका स्वयंवर।

रोहिणी अरिष्टपुर के राजाकी लड़की और एक सुप्रतिष्ठित घरानेकी कन्या थी। इसके विवाहका स्वयंवर रचाया गया था, जिसमें जरासन्धादिक बड़ेबड़े प्रतापी राजा दूर देशांतरोंसे एकत्र हुए थे। स्वयंवरमण्डपमें वसुदेवजी, किसी कारण विशेषसे अपना वेष बदल कर, 'पणव' नामका वादित्र हाथ में लिये हुए एक ऐसे रङ्क तथा अकुलीन बाजन्त्री (बाजा बजाने वाला) के रूप में उपस्थित थे कि जिससे किसी को उस वक्त वहां उनके वास्तविक कुल जाति आदि का कुछ भी पता मालूम नहीं था। रोहिणी ने सम्पूर्ण उपस्थित राजाओं तथा राजकुमारोंका प्रत्यक्ष देखकर और उनके वंश तथा गुणादिका परिचय पाकर भी जब उनमेंसे किसीको भी अपने योग्य वर को पसंद नहीं किया तब उसने, सब लोगोंको आश्चर्य्य में डालते हुए, बड़े ही निःसङ्कोच भावसे

उक्त बाजन्त्री रूपके धारक एक अपरिचित और अज्ञातकुलजाति नामा व्यक्ति (वसुदेव) के गलेमें ही अपनी वरमाला डाल दी। रोहिणीके इस कृत्य पर कुछ ईर्षालु, मानी और मदान्ध राजा, अपना अपमान समझकर कुपित हुए और रोहिणीके पिता तथा वसुदेव से लड़नेके लिये तैयार हो गये। उस समय विवाहनीति का उल्लंघन करनेके लिये उद्यमी हुए उन कुपितानन राजाओंको सम्बोधन करके, वसुदेवजीने बडी तेजस्विताके साथ जो वाक्य कहे थे उनमेंसे स्वयंवर-विवाहके नियमसूचक कुछ वाक्य इस प्रकार हैं :—

कन्या वृणीते रुचितं स्वयंवरगता वरं।
कुलीनमकुलीनं वा क्रमो नास्ति स्वयंवरे॥

—सर्ग ११, श्लोक ७१।

अर्थात् स्वयंवरको प्राप्त हुई कन्या उस वरको वरण (स्वीकार) करती है जो उसे पसन्द होता है, चाहे वर कुलीन हो या अकुलीन। क्योंकि स्वयंवरमें इस प्रकारका—वरके कुलीन या अकुलीन होने का—कोई नियम नहीं होता। ये वाक्य सकलकीर्त्ति आचार्य्यके शिष्य श्रीजिनदास ब्रह्मचारीने अपने हरिवंशपुराणमें उद्धृत किये हैं और श्रीजिनसेनाचार्य्य कृत हरिवंशपुराणमें भी

प्राय: इसी आशयके वाक्य पाये जाते हैं। वसुदेवजी के इन वचनों से उनकी उदार परिणति और निर्भिकताका अच्छा परिचय मिलता है, और साथ ही स्वयंवर-विवाह की नीतिका भी बहुत कुछ अनुभव हो जाता है। वह स्वयंवर-विवाह, जिसमें वरके कुलीन या अकुलीन होने का कोई नियम नहीं होता, वह विवाह है जिसे आदिपुराणमें श्रीजिनसेनाचार्यने ' सनातनमार्ग ' लिखा है और सम्पूर्ण विवाह विधानों में सबसे अधिक श्रेष्ठ (वरिष्ठ) विधान प्रकट किया है*। युगकी आदिमें सबसे पहले जब राजा अकम्पन द्वारा इस (स्वयंवर) विवाह का अनुष्ठान हुआ था तब भरत चक्रवर्तीने भी इसका बहुत कुछ अभिनन्दन किया था। साथ ही, उन्होंने ऐसे सनातन मार्गोंके पुनरुद्धारकर्त्ताओं को सत्पुरुषों द्वारा पूज्य भी ठहराया था †। अस्तु। विवाह की यह सनातन विधि

---

*सनातनोऽस्ति मार्गोऽयं श्रुतिस्मृतिषु भाषितः
विवाहविधिभेदेषु वरिष्ठो हि स्वयंवरः ॥ ४४-३२ ॥

†तथा स्वयंवरस्येमे नाभूवन्यद्यकम्पनाः।
कः प्रवर्त्तयितान्योऽस्य मार्गस्यैष सनातनः ॥५४॥
मार्गाश्चिरंतनान्येऽत्र भोगभूमितिरोहितान्।
कुर्वन्ति नूतनान्सन्तः सद्भिः पूज्यास्त एव हि ॥५५॥
—आ० पु० पर्व ४५।

कहना होगा कि वे सर्वज्ञ भगवान्की आज्ञायें अथवा अटल सिद्धान्त नहीं थे और न हो सकते हैं। दूसरे शब्दोंमें यों कहना चाहिये कि यदि वर्तमान वैवाहिक रीतिरिवाजोंको सर्वज्ञ-प्रणीत—सार्वदेशिक और सार्वकालिक अटल सिद्धान्त—माना जाय तो यह कहना पड़ेगा कि वसुदेवजीने प्रतिकूल आचरणद्वारा बहुत स्पष्टरूपसे सर्वज्ञकी आज्ञा का उल्लङ्घन किया। ऐसी हालतमें आचार्यों द्वारा उनका यशोगान नहीं होना चाहिये था, वे पातकी समझे जाकर कलङ्कित किये जानेके योग्य थे। परन्तु ऐसा नहीं हुआ और न होना चाहिये था; क्योंकि शास्त्रों द्वारा उस समयके मनुष्यों की प्रायः ऐसी ही प्रवृति पाई जाती है, जिससे वसुदेवजी पर कोई कलङ्क नहीं आसकता। तब क्या यह कहना होगा कि उस वक्तके वे रीति-रिवाज सर्वज्ञप्रणीत थे और आजकलके सर्वज्ञप्रणीत अथवा जिनभाषित नहीं हैं? ऐसा कहने पर आज कलके रीति-रिवाजोंको एकदम उठाकर उनके स्थानमें वही वसुदेवजीके समयके रीति-रिवाज कायम कर देना ही समुचित न होगा बल्कि साथ ही अपने उन सभी पूर्वजोंको कलङ्कित और दोषी भी ठहराना होगा जिनके कारण वे पुराने (सर्वज्ञभाषित) रीति-रिवाज उठकर उनके स्थान में वर्तमान रीति-रिवाज कायम

हुए और फिर हम तक पहुँचे। परन्तु ऐसा कहना और ठहराना दुःसाहस मात्र होगा। वह कभी इष्ट नहीं होसकता और न युक्ति युक्त ही प्रतीत होता है। इस लिये यही कहना समुचित होगा कि उस वक्तके वे रीति-रिवाज भी सर्वज्ञ भाषित नहीं थे। वास्तव में ग्रहस्थों का धर्म दो प्रकारका वर्णन किया गया है, एक लौकिक और दूसरा पारलौकिक। लौकिक धर्म लोकाश्रय और पार-लौकिक आगमाश्रय होता है*। विवाहकर्म गृहस्थों के लिये एक लौकिक धर्म है और इसलिये वह लोकाश्रित है—लौकिक जनोंकी देशकालानुसार जो प्रवृत्ति होती है उसके अधीन है—लौकिक जनों की प्रवृत्ति हमेशा एक रूपमें नहीं रहा करती। वह देशकालकी आवश्यकताओं के अनुसार कभी पञ्चायतियोंके निर्णय द्वारा और कभी प्रगतिशील व्यक्तियोंके उदाहरणोंको लेकर, बराबर बदला करती है और इसलिये वह पूर्णरूपमें प्रायः कुछ समयके लिये ही स्थिर रहा करती है। यही वजह है कि भिन्न भिन्न देशों, समयों और जातियोंके विवाहविधानोंमें बहुत बड़ा अन्तर पाया जाता है। एक समय था जब इसी भारतभूमि पर

---

*द्वौ हि धर्मौ गृहस्थानां लौकिकः पारलौकिकः।
लोकाश्रयो भवेदाद्यः परः स्यादागमाश्रयः॥—सोमदेवः।

सगी भाई बहिन भी परस्पर स्त्री पुरुष होकर रहा करते थे और इतने पुण्याधिकारी समझे जाते थे कि वह मरने पर उनके लिये नियमसे देवगतिका विधान किया गया है ×। फिर वह समय भी आया जब उक्त प्रवृतिका निषेध किया गया और उसे अनुचित ठहराया गया। परन्तु उस समय गोत्र तो गोत्र एक कुटुम्ब में विवाह होना, अपनेसें भिन्न वर्ण के साथ शादी का किया जाना और शूद्र ही नहीं किन्तु म्लेच्छों-तकको कन्याओंसें विवाह करना भी अनुचित नहीं माना गया। साथ ही मामा-फूफीकी कन्याओं से विवाह करनेका तो आम दस्तूर रहा और वह एक प्रशस्त विधान समझा गया। इसके बाद समयके हेरफेरसे उक्त प्रवृत्तियों का भी निषेध प्रारम्भ हुआ, उनमें भी दोष निकलने लगे पापों की कल्पनायें होनें लगीं—और वे सब बदलते बदलते वर्तमानके ढाँचेमें ढल गई। इस अर्सेमें सैकड़ों नवीन जातियों, उपजातियों और गोत्रोंकी कल्पना होकर विवाहक्षेत्र इतना सङ्कीर्ण बन गया कि उसके कारण आजकलकी जनता बहुत कुछ हानि तथा कष्ट उठा रही है और क्षतिका अनुभव कर रही है-उसे यह मालूम होने लगा है कि कैसी कैसी समृद्धिशालिनी जातियाँ इन

× यह कथन उस समयका है जब कि यहाँ भोगभूमि प्रचलित थी।

वर्तमान रीति-रिवाजोंके चुङ्गलमें फँसकर संसारसे अपना अस्तित्व उठा चुकी हैं और कितनी मृत्युशय्या-पर पड़ी हुई हैं-इसीसे अब वर्तमान रीतिरिवाजोंके विरुद्ध भी आवाज उठानी शुरू हो गई है। समय उनका भी परिवर्तन चाहता है संक्षेपमें, यदि सम्पूर्ण जगत्के भिन्न भिन्न देशों, समयों और जातियोंके कुछ थोड़े थोड़े से ही उदाहरण एकत्र किये जायँ तो विवाहविधानोंमें हजारों प्रकार के भेद उपभेद और परिवर्त्तन दृष्टि गोचर होंगे, और इस लिये कहना होगा कि यह सब समय समय की जरूरतों, देश देश की आवश्यकताओं और जाति जातिके पारस्परिक व्यवहारों का नतीजा है; अथवा इसे कालचक्रका प्रभाव कहना चाहिए। जो लोग कालचक्रकी गतिको न समझ कर एक ही स्थान पर खड़े रहते हैं और अपनी पोजीशन (Position) को नहीं बदलते-स्थितीको नहीं सुधारते-वे निःसन्देह कालचक्रके आघातसे पीड़ित होते और कुचले जाते हैं। अथवा संसारसे उनकी सत्ता उठ जाती है। इस सब कथनसे अथवा इतने ही संकेतसे लोकाश्रित (लौकिक) धर्मों का बहुत कुछ रहस्य में समझ आसकता है। साथ ही यह मालूम हो जाता है कि वे कितने परिवर्तनशील हुआ करते हैं। ऐसी हालतमें विवाह जैसे लौकिक धर्मों और

सांसारिक व्यवहारोंके लिये किसी आगमका आश्रय लेना, अर्थात्-यह ढूंढ खोज लगाना कि आगममें किस प्रकारसे विवाह करना लिखा है, बिल्कुल व्यर्थ है। कहा भी है "संसारव्यवहारे तु स्वतःसिद्धे वृथागमः*।" अर्थात्, संसार व्यवहारके स्वतः सिद्ध होनेसे उसके लिये आगम की जरूरत नहीं। वस्तुतः आगम ग्रन्थोंमें इस प्रकारके लौकिक धर्मों और लोकाश्रित विधानों का कोई क्रम निर्द्धारित नही होता। वे सब लोकप्रवृत्ति पर अवलम्बित रहते हैं हाँ कुछ त्रिवर्णाचारों जैसे अनार्ष ग्रन्थोंमें विवाह-विधानों का वर्णन जरूर पाया जाता है। परन्तु वे आगम ग्रन्थ नहीं हैं–उन्हें आप्त भगवान्‌के वचन नहीं कह सकते और न वे आप्तवचनानुसार लिखेगये हैं इतने पर भी कुछ ग्रन्थ तो उनमेंसे बिल्कुल ही जाली और बनावटी हैं; जैसा कि 'जिनसेनत्रिवर्णाचार' और 'भद्रबाहुसंहिताके' के परीक्षालेखों से प्रगट है ×। वास्तवमें यह सब ग्रन्थ एकप्रकारके लौकिक ग्रन्थ हैं। इनमें प्रकृत

*यह श्रीसोमदेव आचार्य्य का वचन है।

× ये सब लेख 'ग्रन्थपरीक्षा' नामसे पहिले जैनहितैषी पत्र में प्रकाशित हुए थे और अब कुछ समयसे अलग पुस्तकाकार भी छप गये हैं। बम्बई और इटावा आदि स्थानोंसे मिलते हैं।

विषयके वर्णनको तात्कालिक और तद्देशीय रीतिरिवाजोंका उल्लेख मात्र समझनाचाहिये अथवा यों कहना चाहियेकि ग्रन्थकर्त्ताओंको समाजमें उस प्रकारके रीतिरिवाजोंको प्रचलित करना इष्ट था। इससे अधिक उन्हें और कुछभी महत्व नहीं दिया जा सकता वे आजकल प्रायः इतने ही कामके हैं-एकदेशीय, लौकिक और सामयिक ग्रन्थ होनेसे उनका शासन सार्वदेशिक और सार्वकालिक नहीं हो सकता। अर्थात्-सर्व देशों और सर्व समयोंके मनुष्योंके लिये वे समान रूपसे उपयोगी नहीं हो सकते। और इसलिये केवल उनके आधार पर चलना कभी युक्तिसङ्गत नहीं कहला सकता। विवाही विषयमें आगमका मूलविधान सिर्फ इतना ही पाया जाता है कि वह गृहस्थधर्मका वर्णन करते हुए गृहस्थके लिये आम तौरपर गृहिणीकी अर्थात् एक स्त्रीकी जरूरत प्रकट करता है। वह स्त्री कैसी, किस वर्ण की, किस जातिकी, किन २ सम्बन्धोंसे युक्त तथा रहित और किस गोत्रकी होनी चाहिये अथवा किस तरह पर और किस प्रकारके विधानोंके साथ विवाह कर लानी चाहिये इन सब बातोंमें आगम प्रायः कुछ भी हस्तक्षेप नहीं करता। ये सब विधान लोकाश्रित है आगमसे इनका प्रायः कोई सम्बन्ध विशेष नहीं है। यह दूसरी बात है कि आगममें किसी

धर्मा विशेषका उल्लेख करते हुए उनका उल्लेख अन्याय और तात्कालिक दृष्टिसे उन्हें अच्छा या बुरा भी बतला दिया जाय; परन्तु इससे वे कोई सार्वदेशिक और सार्व कालिक अटल सिद्धान्त नहीं बन जाते—अर्थात् ऐसे कोई नियम नहीं हो जाते कि जिनके अनुसार चलना सर्व देशों और सर्व समयोंके मनुष्योंके लिये बराबर जरूरी और हितकारी हो हाँ, इतना जरूर है कि आगमकी दृष्टिमें सिर्फ वही लौकिक विधियाँ अच्छी और प्रमाणिक समझी जा सकती हैं जो जैन सिद्धान्तोंके विरुद्ध न हों, अथवा जिनके कारण जैनियोंकी श्रद्धा (सम्यक्त्व) में बाधा न पड़ती हो और न उनके व्रतोंमें ही कोई दूषण लगता हो। इस दृष्टिको सुरक्षित रखते हुए जैनी लोग प्रायः सभी लौकिक विधियोंको खुशीसे स्वीकार कर सकते हैं और अपने वर्त्तमान रीति-रिवाजों में देशकालानुसार, यथेष्ट परिवर्तन कर सकते हैं *। उनके लिये इसमें कोई बाधक नहीं है। अस्तु; इस सम्पूर्ण विवेचनसे प्राचीन और अर्वाचीनकालके विवाह विधानोंकी विभिन्नता, उनका देश कालानुसार परिवर्त्तन और लौकिक धर्मोंका रहस्य इन सब

---

* सर्व एव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः।
यत्र सम्यक्त्वहानिर्न यत्र न व्रतदूषणम् ॥—सोमदेवः।

बातोंका बहुत कुछ अनुभव प्राप्त हो सकता है, और साथ ही यह भले प्रकार समझमें आ सकता है कि वर्त्तमान रीति-रिवाज कोई सर्वज्ञभाषित ऐसे अटल सिद्धान्त नहीं हैं कि जिनका परिवर्त्तन न हो सके अथवा जिनमें कुछ फेरफार करनेसे धर्मके डूब जानेका कोई भय हो हम अपने सिद्धान्तोंका विरोध न करते हुए, देश काल और जाति की आश्यकताओं के अनुसार उन्हें हर वक्त बदल सकते हैं वे सब हमारे ही कायम किए हुए नियम हैं और इसलिए हमें उनके बदलनेका स्वतः अधिकार प्राप्त है। इन्ही सब बातोंको लेकर एक शास्त्रीय उदाहरणके रूपमें यह नोट लिखा गया है। आशा है कि हमारे जैनी भाई इससे जरूर कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगे और विवाहतत्त्वको समझ कर जिसके समझनेके लिये विवाहका उद्देश्य × नामक निबन्ध भी साथमें पढ़ना विशेष उपकारी होगा, अपने वर्तमान रीति-रिवाजों में यथोचित फेरफार करनेके लिये समर्थ होंगे। और इस तरह पर कालचक्र के आघातसे बचकर अपनी सत्ताको चिरकाल तक यथेष्ट रीतिसे बनाये रक्खेंगे। इत्यलम्।

× यह पुस्तक 'जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,' बम्बई द्वारा प्रकाशित हुई है, और लेखकके पाससे बिना मूल्य भी मिलता है।

शिक्षाप्रद शास्त्रीय उदाहरण।

(२)

हरिवंशपुराणादि जैनकथाग्रन्थोंमें चारुदत्त सेठकी एक प्रसिद्ध कथा है। यह सेठ जिस वेश्या पर आसक्त होकर बर्षों तक उसके घरपर, बिना किसी भोजन पानादि संबंधी भेदके, एकत्र रहाथा और जिसके कारण वह एकबार अपनी सम्पूर्ण धनसंपत्ति को भी गँवा बैठा था उसका नाम 'वसंतसेना' था। इस वेश्या की माताने, जिससमय धनाभाव के कारण चारुदत्त सेठको अपने घरसे निकाल दिया और वह धनोपार्जन के लिये विदेश चला गया उस समय वसंतसेनाने, अपनी माताके बहुत कुछ कहने पर भी, दूसरे किसी धनिक पुरुषसे अपना संबंध जोड़ना उचित नहीं समझा और तब वह अपनी माताके घरका ही परित्याग कर चारुदत्तके पीछे उसके घरपर चली गई। चारुदत्तके कुटुम्बियोंने भी वसंतसेना को आश्रय देनेमें कोई आना कानी नहीं की। वसंतसेना ने उनके समुदार आश्रयमें रहकर एक आर्यिका के पाससे श्रावकके १२ व्रत ग्रहण किये, जिससे उसकी नीच परिणति पलटकर उच्च तथा धार्मिक बनगई; और वह बराबर चारुदत्त की माता तथा स्त्री की सेवा करती हुई निःसंकोच

भाव से उनके घरपर रहने लगी। जब चारुदत्त विपुल धन सम्पतिका स्वामी बनकर विदेश से अपने घरपर वापिस आया और उसे वसंतसेनाके स्वगृह पर रहने आदि का हाल मालूम हुआ तब उसने बड़े हर्षके साथ वसंतसेना को अपनाया-अर्थात्, उसे अपनी स्त्री रूपसे स्वीकृत किया। चारुदत्तके इस कृत्य पर अर्थात्, एक वेश्या जैसी नीच स्त्री को खुल्लम खुल्ला घरमें डाल लेनेके अपराध पर उस समय की जाति बिरादरी ने चारुदत्त को जातिसे च्युत अथवा बिरादरीसे खारिज नहीं किया और न दूसरा ही उसके साथ कोई घृणा का व्यवहार किया गया। वह श्रीनेमिनाथ भगवान के चचा वसुदेवजी जैसे प्रतिष्ठित पुरुषोंसे भी प्रशंसित और सम्मानित रहा। और उसकी शुद्धता यहां तक बनी रही कि वह अन्तको उसके दिगम्बर मुनि तक होने में भी कुछ बाधक न होसकी। इस तरह पर एक कुटुम्ब तथा जाति बिरादरी के सद्व्यवहार के कारण दो व्यसनासक्त व्यक्तियों को अपने उद्धार का अवसर मिला।

इस पुराने शास्त्रीय उदाहरणसे वे लोग कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं जो अपने अनुदार विचारों के कारण ज़रा ज़रा सी बात पर अपने जाति भाइयों को जातिसे च्युत करके-उनके

धार्मिक अधिकारों में भी हस्तक्षेप करके-उन्हें सन्मार्ग से पीछे हटा रहे हैं और इस तरह पर अपनी जातीय तथा संघशक्ति को निर्बल और निःसत्व बनाकर अपने ऊपर अनेक प्रकार की विपत्तियों को बुलाने के लिये कमर कसे हुए हैं। ऐसे लोगों को संघशक्ति का रहस्य जानना चाहिये और यह मालूम करना चाहिये कि धार्मिक और लौकिक प्रगति किस प्रकार से होसकती है। यदि उस समय की जाति बिरादरी उक्त दोनों व्यसनासक्त व्यक्तियोंको अपने में आश्रय न देकर उन्हें अपने से पृथक् कर देती, घृणा की दृष्टि से देखती और इस प्रकार उन्हें सुधारने का कोई अवसर न देती तो अन्त में उक्त दोनों व्यक्तियों का जो धार्मिक जीवन बना है वह कभी न बन सकता। अतः ऐसे अवसरों पर जाति बिरादरी के लोगों को बहुत सोच समझकर, बड़ी दूरदृष्टि के साथ काम करना चाहिये। यदि वे पतितों का स्वयं उद्धार नहीं कर सकते तो उन्हें कमसे कम पतितों के उद्धार में बाधक न बनना चाहिये और न ऐसा अवसर ही देना चाहिये जिससे पतितजन और भी अधिकता के साथ पतित होजायँ।

गयादत्त प्रेस, बड़ा दरीबा देहली में छपा।

॥ ओ३म् श्री वीतरागाय नमः ॥

दया दर्पण।

ट्रैक्ट नं० — ४२

लेखक —

श्रीयुत पं० हंसराज शास्त्री

जालन्धर शहर।

प्रकाशक —

श्री आत्मानन्द जैन ट्रैक्ट सोसायटी

अम्बाला शहर।

श्रीवीर सम्वत् २४४६ आत्म सम्वत् २४.

विक्रम सम्वत् १९७७ ईस्वी सन् १९२०,

प्रथमावृत्ति १०००] [मूल्य ।।।

रामकिशन प्रेस. जालन्धर शहर

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

॥ दया दर्पण ॥

करके नमन जिन देव को भाषा में कविता कर रहा,
अपने हृदय की भावनायें लेख में हूं भर रहा।
कीजिये इसकी परीक्षा खोटी है अथवा खरी,
है योग्यता अनुसार मेरी भावना रस की भरी ॥ १ ॥

सोचना तुम पाठको ! जब गर्भ का गृह था मिला,
बिन पूर्ण अवधि के वहां से कौन सकता था हिला।
कफ, रक्त, मज्जा, मांस मूत्र, पुरीष का ही कुण्ड था,
सत्य है कहदूं यदि वैतरणी नदी का कुण्ड था ॥ २ ॥

टांग थी ऊपर को खड़ी और शीर्ष नीचे हो रहा,
प्रार्थना कर जिन प्रभु से पूर्व दुष्कृत धो रहा।
हे प्रभो ! इकबार अब भी फिर क्षमा मोहिं दीजिए,
फिर भी यदि समझूं नहिं तो जो चाहे सो कीजिए ॥ ३ ॥

योनि सहस्रों में फिरा अरु कर्म बन्धन में पड़ा,
जिनदेव ! मेरे हो तुम्हीं अब द्वार पै तेरे खड़ा।

जिन देव ने यह दीन वाणी दीन की सुनि के तभी।
करदी दया, बाहिर हुआ कह—'प्रण न भूलूंगा कभी ॥ ४ ॥
मन लुभाता था न इसका अन्न आदि पदार्थ में,
पय से पयोधर भर दिया उसके लिए ही यथार्थ में।
चलने लगा जब भार धुर ने तात माना तुष्ट हो,
करने लगे तब उसका पोषण जिसमे बालक पुष्ट हो ॥ ५ ॥
आया समय जब यौवनोद्‌गम का तभी पढ़ने लगा,
कीनी दया उस पर गुरु ने नियम नव घढ़ने लगा।
निज लाभ हित जो नियम थे घनश्याम उनको दे दिया,
भूलि के प्रण रत्न इसने कांच झूठा ले लिया ॥ ६ ॥
हे मूर्ख मानव समझ ले अब भी पशु क्यों बन रहा,
हो गये हजारों भूपति तन ना रहा न धन रहा।
ऐश्वर्य है मेघों की छाया क्यों करे अभिमान है ?
चार दिन की चांदनी का तू भी तो मेहमान है ॥ ७ ॥
रे जीव मानुष जन्म पा आया है तू संसार में,
जो देह मिलती मत्स्य की रहती तो तोय अपार में।
हस्ती भी बनता काम किंकर मृग भी बनता गान को,
रूप का लोभी पतंगा भ्रमर होता गान को ॥ ८ ॥
बस समझ लो वह पुरुष ना जो धर्म करता है नहीं,
अपने अमूल्य शरीर को नित नष्ट करता है वही।
डंका बजे है मौत का आयु प्रति दिन जात है,
उसके लिये इस जगत में फिर भी अन्धेरी रात है ॥ ९ ॥
कहे खरातीराम अब पढ़िये मन चित्तलाय।
जो हो मेरी न्यूनता दीजे क्षमा कराय ॥ १० ॥

प्रातःकाल का समय है, शीतल मन्द सुगन्ध पवन चल रही है। पूर्व दिशा में भगवान सूर्यदेव की उदय काल की लालिमा मनोमन्दिर में आलस्य दूर कर जागृति पैदा कर रही है। उपवनों में चिड़ियों की चिड़चिड़ाहट, वाटिकाओं में समीपवर्ति वृक्षों की वायु वेग से खटखटाहट; कोयलों की पुकार और भ्रमरों की गुंजार मन लुभा रही हैं। इसी अन्तर में इस ब्रह्माण्ड के किसी अण्ड में गुणागारपुरी के निवासी सदा प्रवासी मनमहोदय की दो वृत्तिरूप कन्याएं एक दूसरे से विरुद्ध झगड़ा उठाय विवाद रंगस्थल में पधार कर अपना २ भाव प्रकट करने लगीं। इनमें से एक का नाम सदया और दूसरी का निर्दया था।

सदया—संसार क्षण भंगुर न होने पर भी विनश्वर है। जीवन की अवस्था झाग के समान क्षण दृष्ट नष्ट है। यह कलेवर केवल अस्थि, मांस, मूत्र पुरीषादि का निवास है इन्हीं के आश्रय पर इसका सौन्दर्य्य है। मनुष्य के जीवन को रात दिन का समय अप्रतिहत वायु वेग के समान धकेलता जा रहा है। वह अत्यन्त मूर्ख है जो मोक्ष मार्ग के साधन इस शरीर रत्न को सांसारिक विषयों में फंसकर नष्ट करता है। मुझे तो शुद्ध चैतन्य आत्मा के प्रकाश ने बचाया, अन्यथा मैं भी स्वजन्म को व्यर्थ ही व्यतीत करती।

निर्दया—आलि तू उन्मत होकर क्या कह रही है। तुझे क्या मिल गया। तेरी तो दरिद्रावस्था है। मेरे सेवक मेरी आज्ञा का पालन करते है। मैं परमानन्द में हूं। देखती है ना ?

सदया—प्रिये जो तू कहती है सो ठीक नहीं क्योंकि यह तेरा आनन्द केवल ऐहिलौकिक है।

निर्दया—तो कृपया मुझे भी अपने आनन्द का साधन बतादो।

सदया—अपने नाम को मिटाकर हृदय में मेरा नाम धारण करो। देखो:—

अद्रोहः सर्वभूतेषु, कर्म्मणा, मनसा गिराः।
अनुग्रहश्च दानंच एषधर्म सनातनः॥

(भावार्थ)–सब जीवों पर मन वाणी कर्म से दया और दान देना यही सनातन धर्म है।

निर्दया—अच्छा तो मैं आप का वचन शिरोधार्य करती हूं। परन्तु मुझे सदया (शब्द) का अर्थ स्फुटकर बतादो।

सदया—प्राणा यथात्मनोऽभीष्टा भूतानामपिते तथा
आत्मौपम्येन भूतेषु दया कुर्वन्ति साधवः॥

(भावार्थ)–जैसे अपने प्राणप्रिय हैं [illegible] ही और जीवों के। अत-एव साधु लोग आत्मा की उपमा से जीवों पर दया करते हैं। इस बात का निश्चय समझना कि दया के अन्दर संसार के सब धर्म आ जाते हैं। वह पुरुष तब तक धर्मी नहीं कहा सकता जब तक वह दयालु न हो।

नवीन सदया—क्या आप कृपा करके मुझे दया का स्वरूप स्थूलरूप में बता दोगी जिससे मुझे आपके कथन का। [illegible]

सदया—प्रिये देख यह भी एक दया का ही स्वरूप है जैसा मैं तेरे साथ बर्त्ताव करती हूं, क्योंकि आर्त अथवा जिज्ञासु किसी से कुछ पूछता हो तो यदि बतलाने वाला प्रत्याख्यान करदे तो जिज्ञासु को कितना दुःख होगा। अतएव प्रेम से बता देना भी एक दया का ही भाव है। *

नवीन सदया—भगिनी ! मैं बार २ अपने कर्णेन्द्रिय को समझा रही हूं परन्तु वह इतना मुग्ध है कि आपके बचनामृत से वंचित नहीं रह सकता।

सदया—क्यों न ऐसा हो विद्वानों का कथन असत्य नहीं हो सकता, 'करत करत अभ्यास ते जड़मति होत सुजान' अब तुझको धर्मप्रियता ने अपना पात्र बना लिया। अच्छा तो मैं तुझे एक आख्यायिका सुनाती हूं।

नवीन सदया—आख्यायिका सुनाने से प्रथम मैं एक अत्यावश्यक प्रार्थना करती हूं कि आप मुझे वे ही शब्द सुनावें कि जिनका पर्यवसान दया भाव में ही हो।

सदया—प्रिये किसी नगर में एक निर्धन मनुष्य निवास करता था घर में दारिद्र्य ने अवतार लिया हुआ था। बालक बालिका भूख के मारे माता के एक फटे पुराने कपड़े को चीर फाड़ रहे थे जिससे माता का शरीर नग्न हो रहा था। सूर्यप्रभा होते ही घर का सब काम कर डालना पड़ता था। क्योंकि रात्रि को

जगाने के लिये दीपक में तेल भी न था। चारपाई ऐसी टूटी फूटी थी कि बच्चे ऊपर चढ़ते ही नीचे गिर पड़ें ऐसी वह नारी कुलीन दीन हीन अवस्था में जीर्ण वस्त्र पर हाथ धर बालकों के समक्ष प्राणनाथ से बोली।

नारी—प्राणनाथ-कृपा करो। भूख के मारे बच्चों के प्राण निकल रहे हैं कहीं जाकर बच्चों को जलपान कराने के लिये कुछ लावो। अपने रक्षक अन्तर्यामी हैं।

निर्धन— प्रिये अभी मेरा भाग्योदय नहीं हुआ। मन्द भाग्यता के चक्र में घिरा हूं। इनके भी भाग्य मन्द हैं, जो बच्चों ने हमारे घर में जन्म लिया। हां मैं तेरे कथनानुसार जाता हूं। यदि मुझे अधिक समय लग जाय तो तुमने पड़ोस की मेहनत से बच्चों की पालना अवश्य करनी।

नारी—प्राणनाथ ! आप मुझ अभागिनी को छोड़कर जा सकते हैं। प्रभु जिनेश्वर देव मार्ग में आपके सहायक हों। निर्धनमानव प्रियाकी आर्तवाणीसे आंसू बहाता हुआ घर से निकल पड़ा। चलते २ मार्ग में किसी आभूषणयुक्त स्त्री को साथ लिये हुये एक दुष्टात्मा मिला ज्यों ही निर्धन पर इसकी दृष्टि पड़ी त्यों ही झट इसे पुकारा "अरे ! तू कौन है। कहां से आया है कहां जाने का तेरा विचार है ? शीघ्र कह !"

निर्धन—मैं एक गरीब हूं। बाल बच्चों का तरस खाकर कहीं रोजगार ढूंढने चला हूं।

दुष्ट—यदि तू इस स्त्री को अपने हाथों से मार दे तो तुझे बहुत सा धन दूंगा । जिससे यावज्जीवन सुख से निर्वाह होगा ।

निर्धन—शान्त शान्त ! प्राण निकल जांय परन्तु यह निर्दयता का कार्य कभी न करूंगा ।

दुष्ट—क्या श्रेष्ठ वह काम नहीं जिससे दुःख दूर हो ?

निर्धन—पाप कार्य से इस लोक का दुःख दूर होने पर भी पर-लोक के दुःख का भय लगता है ।

दुष्ट—परलोक किसे कहते हैं और वह कौन सा है ?

निर्धन—परलोक दूसरे लोक को कहते हैं और सुख दुख का निर्णय भी वहां पर ही होता है ।

दुष्ट—अरे बावले ! सुख दुःख का निर्णय कैसा ?

निर्धन—नीच बुद्धे ! देख सारा संसार पैदा होने से ही दृष्टि में आता है । सैकड़ों सुखी हैं । हजार दुःखी हैं । क्रोड़ों मध्यम अवस्था में हैं । देख मैं प्रारब्धवश अपने बच्चों का पेट तक नहीं पाल सकता अपनी तो बात ही क्या कहूं । अरे अधम मते ! इस तेरे कथनानुसार मेरी क्या गति होगी ।

दुष्ट—"वास्तव में इसका कथन अक्षरशः सत्य है । वह पर-लोक मेरा भी आधार है" । यह विचार भगिनी कह उस स्त्री को छोड़ दुष्ट ने उस निर्धन के आगे सिर झुकाया और अपना मार्ग लिया ।

निर्धन मैं आया किस लिये था। मार्ग में और उपद्रव होने लगा था। घर वाले मुझे क्या कहते होंगे। यह विचार कर वह दीन चलता चलता किसी राजा की नगरी में पहुंचा। प्रति दिन प्रातःकाल होते ही राज-सभा में जाता और अन्त में आशीस देकर चला आता। एक दिन राजा ने उसे पूछा।

राजा—रे भद्रपुरुष! यहां तुम प्रतिदिन किस उद्देश्य से आते हो।

निर्धन—उपजीविकार्थ।

राजा—अच्छा मेरे पास रहो परन्तु वेतन (तनखाह) बिना मांगे और मांगने पर भी न मिलेगी।

निर्धन—(मन में) यह प्रतिज्ञा और भी दुःखदायिनी है। (विचारकर) अच्छा बड़े वृक्ष का आश्रय लो फल न मिलने पर भी छाया कौन छीन सकता है। (सुनकर) अच्छा महाराज! इस प्रकार कुछ काल बीतने पर एक दिन प्रसन्न बदन राजा उस निर्धन से बोला, सुनाओ कोई नई बात।

निर्धन—महाराजाधिराज! मैं आज प्रातःकाल भ्रमणार्थ नगर से बाहिर बहुत दूर चला गया था। मार्ग में एक सरोवर पर एक विचित्र पक्षी देखा। मुझे बड़ा ही आश्चर्य हुआ। कारण इसकी चोंच घी की थी और शेष शरीर लवण(नमक)का था। जब यह पानी से बाहिर आता तो इसकी चोंच धूप से पिघलती थी और जब यह पानी के भीतर जाता तो इसकी पीठ गलती थी। परन्तु है वह जिन्दा।

राजा—अरे बावले वह जीता कैसे रह सकता है।

निर्धन—इसमें आश्चर्य्य की क्या बात है। जैसे मैं जिन्दा हूं।

राजा—(मन में) ओहो मैंने बड़ा अनर्थ किया जो इसकी बात भी न पूछी। उससे बोला कि अच्छा जब तेरे ग्राम का कोई आवे तो मुझे बताना।

एक दिन अकस्मात् उसके पड़ौसी व्यापारी वहां व्यापारार्थ आये। विचारा निर्धन उनको देख लज्जा के मारे मुख छिपाय बराबर पहुंचा। झट उन्होंने बुलाकर कहा "भाई कैसा समाचार है?"

निर्धन—अच्छा है। आप जब वापिस जावें तो मुझे मिल कर जांय।

व्यापारी—बहुत अच्छा।

निर्धन—विचार करता हुआ राजा के पास पहुंचा और बोला महाराज आपके कथनानुसार आपके पास पहुंचा हूं।

राजा—आपने बड़ा अच्छा किया जो मुझे सूचना दे दी। आपने अब प्रातः दर्शन देना।

निर्धन—राजा का वचन सुन प्रसन्न मन चल पड़ा।

प्रातःकाल जब निर्धन राजा के पास पहुंचा तो उसने उसे केवल आठ मंसूरी पैसे दिये।

निर्धन ने खेद से आठ पैसे ले "इनसे मेरे कुटुम्ब का क्या पालन पोषण होगा" यह विचार कर उन पैसो के अनार लेकर देदिये। व्यापारियों ने सानन्द सन्देश ले लिया।

मार्ग में एक और राजा का राज्य पड़ता था अतः यह व्यापारी विश्रामार्थ वहां ठहर गये। वहां के राजा का राजकुमार बीमार था। वैद्य लोग हार मान चुके थे। राजा ने जिस समय "सब वैद्य मेरे राज्य से चले जायं" यह आज्ञा निकाली तब एक पुराना वैद्य बोला—"इस समय अनारों की बहार नहीं"—महाराज ! यदि अनार मिल जायं तो इसी समय राजकुमार का स्वास्थ्य अच्छा हो जाय। राजा ने वृद्ध वैद्य का वचन सुनकर नगर में आघोषणा (मुनादी) करादी कि यदि किसी के पास अनार हों तो राज दरबार में पेश करे। बड़ा इनाम मिलेगा।

व्यापारियों ने जब यह आघोषणा सुनी तो अपने दिल में विचारने लगे कि जो राजदरबार से मिलेगा उसका भागी कौन है। पहिले तो मन में मलिनता आई परन्तु अन्त में सबने यह निश्चय किया कि उन गरीबों के साथ धोखा करना महापाप है। वे सब दया के पात्र हैं जो मिले सो उनको देंगे। इस प्रकार निश्चय कर अनार ले राज दरबार में पहुंचे अनार समर्पण किये। दैवयोग से अनार सेवन करने से राजकुमार का रोग जाता रहा। उन व्यापारियों को बहुत सा धन मिला। जब यह व्यापारी वहां से विदा हो अपने ग्राम में पहुंचे तो यह विचारा कि एक ही बार सारा धन देने से इनको अभिमान होगा। अतएव उनको थोड़ा २ करके देदेना चाहिए। ऐसा ही उन्होंने किया। निर्धन के घर में मंगल कार्य होने लगे। दरिद्रावस्था दूर हुई। कुछ काल के अनन्तर फिर वे सब व्यापारी उसी राजा के राज्य में व्यापारार्थ गये। निर्धन पहिली शर्म का मारा कान

कसरत कर चलने लगा। उसी समय सबने पुकारा:—"कहो कुशल तो है? तुम्हारा सन्देशा तुम्हारी सन्तान को दे दिया था।" और भेद कुछ नहीं बताया।

निर्धन! मैं उस कृपा के लिये आपका आभारी हूं और आशा करता हूं कि इसबार भी आप मुझे मिलकर जायंगे।

यहां से चलकर वह राजा के समीप पहुंचा और बोला 'श्रीमन्' मैंने फिर अपने ग्राम के व्यापारी देखे हैं।

राजा क्रोध भरी दृष्टि से लात मार कर बोला 'अरे मूढ़ लोभीजन! मैंने तुझपर इतनी दया की कि तुझे आठ मंसूरी पैसे भी दिये यद्यपि अपनी प्रतिज्ञानुसार तुझे कुछ भी न मिलना चाहिए था परन्तु शोक तू न समझा। उठ जाकर उनसे पूछ कि उन पैसों से सारी उमर का दुःख दूर हुआ कि नहीं!

निर्धन चला। व्यापारियों के पास पहुंचा तो पता लगा कि उसके घर में उन दया दृष्टि के पैसों से सब ऐश्वर्य विद्यमान हैं। शीघ्रता से राजा के पास जा धन्यवाद दे अपने घर की राह ली।

सदया—प्रिये इसी प्रकार यह संसार चक्र दया पर ही निर्भर है। पिता का कुटुम्ब पर पालन पोषण भाव भी दया के आधार पर है। पशु, पक्षी तथा कीटादियों में भी और धर्म की अपेक्षा यही धर्म दृष्टि गोचर होता है। सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर पता चलता हैं कि आसुरीवृत्ति के विना दैवी वृत्ति दयाभण्डार पर अधिकार किये हुए है।

नवीन दया—यदि पुरुष दयालु न हों तो क्या हानियें होती हैं ?

सदया—देश में दुर्भिक्ष, परस्पर युद्ध, पैर २ में क्लेश पराक्रम का नाश और कृशता तथा निर्बलता का आविर्भाव।

दीन दया—क्या यह आपका कहना सत्य है। यदि है तो नजर क्यों नहीं आता।

सदया—प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्। देखो—

आज होती जो दया तो देश भूखा क्यों मरे।
काल ऐसा आगया सब जीव जन्तु दुःख भरे॥
सोचो तनिक मनमें सभी भारत की कैसी दुर्दशा।
अन्न क्रोड़ों मन का होता तो भी हमि कर्कशा॥
सोचकर कहदोगे तुम भी काल का ही प्रभाव है।
सिद्धान्त मेरा है जगत में दया का ही अभाव है॥
ग्रन्थ हैं यश गारहे जिस धेनु का दिन रात में।
बिन रोक चलती है कटारी उस गौ के गात में॥
होती कटारी से कमी आई मशीनें देश में।
फिर भी जखीरा भर रहा लादी गई परदेश में॥
भारत सपूतो सोचना क्या उन्नति होगी कभी।
कर दो दया सब धेनु पे फिर मान वृद्धि हो तभी॥
यूरुप नहीं भारत है यह बिन बैल भूमि बहे।
जो बैल रखता है नहीं वह उपज का फल न लहे॥
सत्य है कहदूं अगर में बैल होने न यहां।
भूख के मारे मनुज सब शीघ्र ही जाते कहां॥
जिस का जगत में मूल नहीं तब पत्र फल नहीं होयंगे।
जो न करें मन में दया वे देश जीवन खोयंगे॥

था है कहीं चारा यहां न धेनुओं के झुण्ड हैं।
दूध घी मिलता नहीं बलवीर भी मत मुण्ड हैं॥
बामन की सृष्टि रह गई दिल की बीमारी बढ़गई।
मस्तिष्क निर्बल हो गये कृशता की गुड्डी चढ़गई॥
भूख के मारे सभी करते परस्पर युद्ध हैं।
दोषों का अड्डा बनगया न दिल सभी के शुद्ध हैं॥
खाने को चाहता है पिता निज पुत्र को जिस देश में।
मिलकर बचाए देश को पड़ के किसी अब वेश में॥
पेटों पै पत्थर बांधि के नरनारी सोते रात को।
प्रातः ही होते मरगये मानो सभी इस बात को॥
ऐसी दशा को देख के जो धन के पांडी बन गये।
आगे हजारह श्रेष्ठी भी धन मान तन सब तजगये॥
अब मिलि के भाई सब हजारह पड़ दया जंजीर में।
करदो दया सब पै बनो तुम सब दयालु भीर में॥

सदया—और देखो ! गो प्रेम महात्माओं की नस २ में किस प्रकार भरा हुआ है। इसका चित्र निम्नलिखित पद्यों में से दृष्टिगोचर होगा। बिना गो के घृत कहां से प्राप्त हो सकता है।

वयं वन चरा गोपास्सदा गोधन जीविनः।
गावोऽस्मद्दैवतं विद्धि गिरयश्च वनानिच।
कर्षुकाणां कृषिर्वृत्तिः पण्यं विपणी जीविनाम्।
गावोऽस्माकं पराबृत्ति रेतत् त्रैविद्यमुच्यते॥
विद्यया यया युक्तस्तस्य साद्दैवतं परम।
सैव पूजाऽर्चनीया च सैव तस्योपकारिणी

योऽन्यस्य फलमश्नानः करोत्यन्यस्य सत्क्रियाम् ।
द्वावनर्थौ सलभते प्रेत्यचेह चमानवः ॥

पयसा नद्यः प्रवर्त्यन्ताम् (दूध की नदी बहुत संख्या में बहाओ) यह वचन उसी समय सार्थक था जब यह भारतवर्ष पूर्णतया दया का भण्डार था।

इस पर अधिक क्या कहूं। सारांश यह है कि शेष संसार के सब धर्म एक एक फल प्रदाता है भुक्ति या मुक्ति। यह धर्म मुक्ति और भुक्ति दोनों देता है। भुक्ति का मिलना प्रत्येक को विदित ही हैं। मुक्ति के विषय में मुक्त कण्ठ से सद्ग्रन्थ पुकार रहे हैं। सिद्धान्त यह है कि गवि सर्वं प्रतिष्ठनम् (गौ में ही सब कुछ प्रतिष्ठित है। भारत सपूतों का प्रथम कर्त्तव्य यही है जिस पर उनका सब कार्य निर्भर है कृपया इस पर दया दृष्टि डालें जिसे उनकी उन्नति के साथ देश का अभ्युदय हो और र्गी आनन्दित रहे। क्योंकिः—

पुरुष नहीं वह जगत में दया हीन नर जोय।
जीवन उसका व्यर्थ है पुरुष पशु है सोय ॥
शौर्य की शोभा तभी दया युक्त जो होय।
बिना दया नहीं शूर है यह जानो सब कोय ॥
वे सब नर हैं मरि चुके दयाहीन जग मांहि।
जो जन्मे त्यों मरि गये जन्म फलित कछु नाहिं ॥
दया भाव जिसके हिये शत्रु करे नहीं जोर।
बिन दारु सब देखलो अग्नि करे नहीं शोर ॥

नवीन दया—मैं आपकी कृतज्ञ हूं कि आपने अपने उपदेशामृत से मुझे कृतार्थ किया और कुमार्गरता मुझको सन्मार्ग दिखाया।

पाठकगण ! मैं यहां पर किसी इतिहास का उल्लेख करना उचित नहीं समझता। मैंने केवल यही दिखाना है कि अनादि काल से ही मनुष्य जीवन के उद्देश्य की तह पर दया चित्र अंकित हैं। इस बात से प्राणिमात्र परिचित है कि प्राचीन इतिहास प्रायः इसी का पुष्टिकारक है कि दया धर्म से बढ़कर दूसरा कोई अन्य धर्म नहीं। अन्य सब धर्म इसी के अन्तर्गत हैं। राजा, शिवि, दधीचि जीमूत वाहन आदि महानुभावों ने इसी धर्म को मुख्य समझा था। ऐश्वर्य, मान, प्रतिष्ठा, प्रभुत्वादि की शोभा बढ़ाने वाला यही दया धर्म है। मनुष्य जन्म भी इसीलिये हुआ है कि दया का भण्डार बने।

वह पुरुष एक कच्चे के समान है जो बड़ा होकर पुत्र स्त्री भृत्य, गौ आदि पर दयाभाव प्रगट नहीं करता। यदि पूर्व पुण्योदय ने तुमको ऊंचा बनाया है तो तुम भी दूसरों को ऊंचा बनाने का प्रयत्न करो और योग्यपात्र को देखकर अपने दया भाव प्रकट करने से न चूको। प्रत्येक पुरुष का कर्त्तव्य है कि जैनधर्म की तरह दया धर्म का पालन कर देश के प्रत्येक कार्य की उन्नति में सहायक होकर अनुगृहीत करे। और गौदया प्रचार में तन, मन, धन से सहायता करें।

अन्त में परमात्मा से प्रार्थना है कि वह कृपया पुरुष की वृत्ति को सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करें।

प्रत्येक सुख का पात्र हो, सानन्द और सुगात्र हो।
ना दुःख का ही योग हो सर्वत्र सब सुख भोग हो॥

* इति *

श्रीआत्मानन्द जैन ट्रैक्ट सोसायटी
अम्बाला शहर ।
की
नियमावली ।

(१) इसका मेम्बर हर एक हो सकता है ।

(२) फीस मेम्बरी कम से कम १) वार्षिक है अधिक देने का हर एक को अधिकार है फीस अगाऊ ली जाती है । जो महाशय एक साथ सोसायटी को ५०) देंगे, वह इसके लाईफ मेम्बर समझे जावेंगे । वार्षिक चन्दा उनसे कुछ नहीं लिया जावेगा ।

(३) इस सोसायटी का वर्ष १ जनवरी से प्रारम्भ होता है । जो महाशय मेम्बर होंगे वे चाहे किसी महीने में मेम्बर बने हों किन्तु चन्दा उनसे ता० १ जनवरी से ३१ दिसम्बर तक का लिया जावेगा ।

(४) जो महाशय अपने खर्च से कोई ट्रैक्ट इस सोसायटी द्वारा प्रकाशित कराकर बिना मूल्य वितीर्ण कराना चाहें उनका नाम ट्रैक्ट पर छपवाया जायगा ।

(५) जो ट्रैक्ट यह सोसायटी छपवाया करेगी वे हर एक मेम्बर के पास बिना मूल्य भेजे जाया करेंगे ।

सैक्रेटरी ।

प्रेमोपहार



स्वीकारिए यह स्नेह-सुमन सुगन्ध का शुभ केन्द्र है
लो यह समर्पण प्रेम का अर्पण तुम्हें 'देवेन्द्र' है
प्रियमित्रवर ! अपनाइये यह प्रेम का उपहार है
तव-प्रेम-वश्य-सुहृद-हृदय के स्नेह का उद्गार है
यह क्षुद्रतर है भेंट पर सच्चा हृदय-सम्मान है
देवेन्द्र ! यह तव-प्रेम-ऋण का क्षुद्रतम प्रतिदान है



स्नेह-सदन, कस्तला
१ मई १९१८



प्रेमार्द्र
कन्हैयालाल जैन

प्रेमोपहार



बस प्रेम तेरी व्याख्या इससे न बढ़कर जानते
पर पुनः कहते हैं न निर्दोषी तुम्हें हम मानते

मङ्गलाचरण

जो है प्रकट चहुँ ओर जिसकी ज्योति जगमग कर रही
प्रच्छन्न शक्ति अपूर्व जो साहस हृदय में भर रही
जो मञ्जु 'छबि' मन मोह कर है औ नयन-अभिराम है
सौ बार सविनय जोड़ कर कर उसे प्रथम प्रणाम है

अवतरण

थी शुष्क ही होती रही जिह्वा मिला पर जल नहीं
बेकल तड़पते ही रहे बिलकुल हमें थी कल नहीं
रोते रहे क्रन्दन किया पर हाय सुनता कौन है ?
बेचोट खाए ही कहो जन शीश धुनता कौन है ?

मैं क्षुद्र साहस पर अहो ! ऊँचा बहुत था चढ़ गया
थोड़े सहारे से हृदय मेरा बहुत था बढ़ गया
जाने बिना गहराइ योंही कूद मैं जल में पड़ा
असमीक्ष्य-कर्मी सर्वदा दुखहो उठाता है बड़ा



जो सोचकर ही प्रथम से इस ओर पग रखता नहीं
जो विषम फलधर वृक्ष पहिले से न बोता ही कहीं
जो सोचता क्या उचित अनुचित है अहो! इस धाममें
तो क्यों भला यों दुख-सहन करते अहो! परिणाममें ?



जो हो गया पर अब वृथा ही सोच उसका क्या करें
क्यों व्यर्थ ही हृद को व्यथा सन्ताप से अपने भरें ?
कबतक मृतकवत् हम बने निश्चेष्ट यों बैठे रहें
उठकर न क्यों दुखमय हृदय के भाव हम सब से कहें ?



ए लेखनी ! बनकर सुदृढ़ लिख 'प्रेम' की सारी कथा
इसको व्यथा भी सर्वथा आनन्दमय सुख भी तथा
जो है अनिर्वचनीय सुख जिनको प्रकट तू कर सके
जो हैं अपरिमित दुख जिन्हें गिन विश्वमें तू भर सके

प्रेमोपहार।

इसके अमित दुखमय विरह को खेदकर लिखना व्यथा
स्वर्गीय सुख शुभशान्तिमय संयोग की प्यारी कथा
इसकी 'जलन' प्रिय 'शान्ति'; इसका 'शोक' इसका अमित 'सुख'
इसकी 'क्षमा' औ नम्रता, 'उद्विग्नता औ अमित 'दुख'



इसके भयङ्कर प्राणघातक अन्त लिखना लेखनी!
संयोग के सुख की कथा लिखना उभय-प्रियता-सनी
दारुण, हृदय-वेधी, शुभग, आमोदवर्द्धक अन्त को
इसके दुखद व्यवहार को इसकी सु-कीर्ति अनन्त को

आरम्भ

हे प्रेम! हृदयोद्गार! शान्त्यागार तुम स्वर्गीय हो
तुम से यहाँ आलोक फैला है, अनिर्वचनीय हो
हो प्रेम! कथनातीत, कुछ वर्णन करेंगे आपका
तुम हो सुखद यदि नाश करते खेद, दुख, सन्ताप का



अमृतमयी स्वर्गीय ज्योति महा भरी है आप में
करुणा-निकेतन! मृदु सुधामय सुरसरी है आप में
सत्कर्म हो सद्धर्म हो मर्म्मज्ञ पण्डित आप हो
विद्वान दिग्गज हो अहो! महिमा-अखण्डित आप हो

हे ! प्रेम तेरी उच्च महिमा यदि अगाध अपार है
तब क्यों तनिक भी 'दुख' तुम्हारा बन सका व्यवहार है
जिसको अहो ! उपकार ही संसार का स्वीकार है
एकान्त जिसका धर्म्म प्रिय निःस्वार्थ सेवा भार है



उसको किसी का क्या अहितकर है उचित होना कभी
विश्वास का भी हम नहीं विश्वास कर सकते तभी
तुझ पर हमारा प्राण धन तन मन सभी कुर्बान हैं
तब बेसुरीली प्रेम ! तूभी छेड़ता क्यों तान है



तू विश्वनाटक बन अनेकों खेल करता नित्य है
शत् धार में शत् रूप में आनन्द—भरता नित्य है
लाखों जनों के दुःख लाखों कष्ट ! हरता नित्य है
स्वाधीन औ स्वच्छन्द पृथ्वी पर विचरता नित्य है



तू है विधाता दूसरा इसमें तनिक संशय नहीं
तू जोड़कर है तोड़ता फिर जोड़कर देता कहीं
अति दृढ़ सरस सम्बन्ध भी तू है बनाना जानता
फिर तोड़कर रसमें तुही विष घोल देना जानता

तू गूँथता है सुदृढ़ सूक्ष्म तार अपने जाल के
उनमें निराला डालता फंदे अनोखी चाल के
जो फँसगया उसमें अहो ! बचना भला उसका कहाँ ?
जो रुग्ण भी बनकर बचा आश्चर्य्य है तब भी वहाँ



विकराल तेरा गाल है तिस पर अनोखी चाल है
स्वर्गीय बन कर भी बना बस दूसरा ही 'काल' है
कर्तव्य पथ यद्यपि तुम्हारा प्रेम ! अति विस्तीर्ण है
तो भी तुम्हारा प्रेम ! यह सच है कि हृद्-संकीर्ण है



तू एक पर मरता द्वितिय पर निठुर बनता खूब है
है एक को कटुतर द्वितिय को मधुर तम महबूब है
तू है सुकोमल किन्तु हम कमनीय कह सकते नहीं
तू पूज्य है पर हम तुम्हे नमनीय कह सकते नहीं



तू बाँधता है दो दिलों में तार इक बेतार का
फिर दूर जाता शब्द है उस तार की झङ्कार का
हैं गूंजते रहते सदा दो दिल उसी झङ्कार से
वे हैं परस्पर बद्ध दोनों बस उसी टङ्कार से

वे भिन्न हैं यदि–तब उन्हें संसार ही निस्सार है
सब है बहार असार उनको सार भी बस छार है
व्यवहार कपटाचार उनको भासता दुख द्वार है
संसार-सार विचार उन्हें असार अस्वीकार है



हम इस विषय को फेर पर रख अब तनिक आगे बढ़े
तज भूमिका, इसके हृदय की गूढ़ परिभाषा पढ़े
बहती वहाँ पर अकथनीय क्षमा-अपार सुशान्ति है
स्वर्गीय प्यारी कान्ति है अव्यक्त शुभ विश्रान्ति है



कल कीर्ति का यह केन्द्र है वह मनुज का शृङ्गार है
वह शान्तिमय व्यवहार है कर्तव्यमय व्यापार है
सद्‌गुण-सलिल-सागर, क्षमाकर शान्ति-सागर प्रेम है
आगार सुषमा का, सुकोमल और नागर प्रेम है



लालित्यमय साहित्यमय उद्गारमय यह प्रेम है
सुविकारमय स्थिरभावमय विस्तारमय यह प्रेम है
चाञ्चल्यमय यह प्रेम है नित नवलतामय प्रेम है
चापल्यमय यह प्रेम है धृति धवलतामय प्रेम है

इससा न कोई शान्त है—इससा नहीं उद्भ्रान्त है
यदि मोद है तो मोद ननु आँसू-झड़ी अविश्रान्त है
हृद्-राज्यकी यह शान्ति है—उसकी पुनः उत्क्रान्ति है
यह है कभी विश्रान्ति—क्लान्ति पुनः यही उद्भ्रान्ति है

यह दूरदर्शी सर्वथा ही है नहीं अति मूढ़ है
इसके न कुछ है अर्थ फिर भी यह बड़ा ही गूढ़ है
कुछ लोग कहते हैं—"लखा सौन्दर्य जो निज नेत्र से
उसको न छोड़ा फेर अन्ततम स्वहृदय-क्षेत्र से"

पर सर्वथा यह असत् है यह है सु-भूषण हृदय का
सौन्दर्य में क्षमता न जो डंका बजावे विजय का
निर्मल-चरित आचार सद्व्यवहार इसकी मूल है
निश्छल-चरित का फूल है—कपटी जनों को शूल है

है नेत्र का सौन्दर्य प्रियता-मूल वह होता नहीं
अस्थिर चपल-संपर्क ऊँचा प्रेम कर सकता कहीं !
यह मर्यादा-स्थायी-सुगुण है शाश्वता-सुख प्रेम है
यह नित्य नित्य नवीन है दृढ़ और निश्चल नेम है

सुन्दर-सुमन-सौरभ नहीं सुख स्वान्त को टुक देसके
औ' हृदय भी यदि शून्य है क्या तब कहा सुख लेसके ?
उसमें निठुरता क्रूरता यदि घर किए बैठी रहें
तब कौन सौरभमय-सुमन गमका सके ! कोई कहें



हृद्शुक्ति हो प्रेमार्द्र भीगेगी न जबतक स्नेह से
जबतक न करुणा सञ्चरित हो प्रेम-जल-कणमेह से
जबतक दयामय भाव दिल के हो न जावेंगे कहीं
तबतक सुमन सौरभ सुखद अपनी उड़ावेंगे नहीं



वह गंध भी उसको कठिन, कटु और तीखी भास हो
चाहे मधुर से भी मधुर मृदुतर सुगंधि सु-वास हो
जो स्नेहरस आस्वाद-क्योंकि-नहीं तनिक पहिचानता
वह विश्व भर की वस्तु का कोई न रस ही जानता



संसार पाहन है—मनुज सब काठ के पुतले उसे
ये वृक्ष गुल्म लता विपिन हैं चित्र के निकले उसे
विधि की नई विधि-चातुरी पर मुग्ध वह होता नहीं
वह बुद्धि निज लख विश्व वैभव-माधुरी-खोता नहीं

गुण और अवगुण भिन्नता में है न उसको खिन्नता
अनभिज्ञ है वह क्या जने होती 'परस्पर-छिन्नता'
किसको मनोमालिन्य कहते हैं न वह कुछ जानता
'समभाव से रहना' यही स्वर्गीय सुख है मानता



संसार क्या व्यापार है ? वह मानवाधम कुछ नहीं
यह जानता, उसको नहीं कुछ दीख ही पड़ता कहीं
वह सभ्यता से अज्ञ है—है अज्ञ उससे शिष्टता
वह 'कर्म' तत्वों से परे है दूर उससे निष्ठता



कर्तव्यपरता, सत्यपथ-अनुसरण उससे दूर है
क्या विश्व की है चाल इससे अज्ञ वह भरपूर है
सच है—मनुज जो प्रेम-प्रण से सर्वथा ही दूर है
अदृष्ट भी बस उस मनुज को सर्वथा ही क्रूर है



जो प्रेम से है हीन इसका मान जो करता नहीं
सम्मान सच्चे प्रेम प्रति जो हृदय में धरता नहीं
जो जानता ही है न कैसा स्नेह का सत्कार है
धिक्कार है ! उस अधम नर के जन्म पर धिक्कार है

उपवन पवन वन घन सघन में वसन भूषण वेश में
जल में लताओं में सुजन-मन-नयन में निज देश में
मां के हृदय में, स्वपत्नी-हृद्देश में, मत् हृदय में
बहती अनर्गल प्रेमधारा ही वहाँ प्रति समय में



जड़ भी अहो! इस प्रेम के सुख तत्व को हैं जानते
आनन्द कुछ अनुभव करें कुछ गुप्त सुख सा मानते
कितना अहो! सुख प्रेम की है मौन भाषा में भरा
पर्याप्त उस सुख के लिए सकते न कह सारी धरा



पङ्कज निरखता सूर्य को—आनन्द अद्भुत है वहाँ
रवि भी स्वकर फैला उठाता है स्वप्रेमी को यहाँ
दे गाढ़ आलिङ्गन स्वप्रेमी को उठाता सूर्य है
है प्रेमलीला धन्य मृतवत् को जिलाता सूर्य है



कर कौमुदी वर्षा कुमुद-गल मिल निशा रोती रही
सुख से कुमुदनी भी सुधाकर-अङ्क में सोती रही
पर जब द्वितीय कृतान्त इव ऊषा दिखाई दे गई
मूर्छा कुमुद जल में गिरा सुख की निशा पूरी भई

ये जन्म से ही मौन भाषा प्रेम की है जानते
इस प्रेम को ये जन्मगत अधिकार अपना मानते
तेरी इयत्ता स्नेह-सत्ता! हम न तुक भी कर सकें
तेरा गुणाम्बुधि क्षुद्र जन हमसे भला क्या तर सकें?



तू भूल भी करना भयानक है अनेकों रङ्ग में
तू है कभी अनचाहतों को जोड़ देता सङ्ग में
दीपक पतिङ्गे का किया यदि स्नेहमय सम्बन्ध है
तब दीप से ही क्यों उसे जलवा-कहाता 'अन्ध' है



तेरी निठुरता प्रेम ये हम से सही जाती नहीं
दुःखान्त-शिक्षा प्रेम की उत्तम कही जाती नहीं
तुम गुणों के आगर हो इसमें तनिक संशय नहीं
पर है यहाँ नैष्ठुर्य बनता आपका कण्टक कहीं



तुम विश्व के हो प्राण-हैं म्रियमाण तुम बिन प्राण भी
तुम बिन विपत्ति समय नहीं ये प्राण पाते त्राण भी
तुम हो अमृत-अर्णव, क्षमाकर, औ सुधा-भण्डार हो
तुम अभ्युदय, उत्थान हो—उत्साह के सञ्चार हो

तुम स्वर्ग, मृत, पाताल तीनों लोक के आलोक हो
प्रणयी-जनों की मत्तता हो प्रेमिका की झोंक हो
तुम प्रेम हो अनिवार्य्य गति तेरी बड़ी बेरोक है
तू 'हर्ष' है, तू 'खेद' है, तू 'मोद' है, तू 'शोक' है



तू कर्मपरता है सिखाता खूब गुरुतर जानता
धीरे बढ़ाया पर तुही नोखे मदन—सर तानता
'उन्मत्तता' तेरा भयद परिणाम भीषण एक है
तू मनुज का स्वोन्मत्तता में नासता सुविवेक है



तेरी भयानकतर विगति छाया छिपाते हम रहे
फूटी पड़े थी वह मगर उसको दबाते हम रहे
अब वह न रह सकती छिपी उसका बताना ठीक है
जब व्याख्या है दोष फिर कैसे छिपाना ठीक है



इस विगति व्याख्या को नहीं 'प्रत्यक्ष' में पाठक ! कहें
है उचित पड़ता जान अगर 'परोक्ष' ही इसमें रहें
थे दो हृदय संघर्ष जिनका गाढ़ था अति हो चला
था एक निश्चल हृदय तो थी दूसरी भी निश्छला

थी शैशवावस्था उभय की खेल में सँग ही गई
थे नित्य दोनों साथ मिल क्रीड़ा किया करते नई
पर क्यों जने थी एक घटना खेदकर उनको महा
सन्ततमिथः दर्शन बिना उनसे न था जाता रहा



थे वाटिका उपवन सदा उनके कलोलों से भरे
अधिकांश उनके ही प्रयत्नों से रहे पौदे हरे
सरिता-निकट तट-धूलि उनकी थी सभी छानी हुई
क्रीड़ास्थल की भूमि उनकी थी सभी मानी हुई



सुख से वनों में प्रेमलीला वे मिथः करते रहे
आमोद धारा में अधिक आनन्द नित भरते रहे
निर्भीक वे स्वच्छन्द कानन में विचरते थे सदा
दोनों परस्पर काल तक से भी न डरते थे सदा



दोनों शनैः बढ़ने लगे प्रगटित नया यौवन हुआ
शशि कला सम विकसित सुभग सुकुमार सुन्दर तन हुआ
वह युवक था जब बीस का वह षोड़शी कन्या हुई
वह था गुणार्णव—सुन्दरी स्वर्गीय वह धन्या हुई

वह सर्व सद्गुण-संयुता थी प्रेम की प्रतिचित्र ही
उसका हृदय था प्रेम-परिमल-प्रभा-पूर्ण विचित्र ही
उनका मिलन पर हाय दुर्लभ और दुष्कर हो गया
आनन्द अनुभव भा मगर होने लगा अब नित नया



देखे बिना कल पर नहीं थी वे उभय बेचैन थे
पारस्परिक दर्शन बिना देखे विकल दिन रैन थे
था प्रेम-पूर्ण-प्रवाह तीखा रोक वे सकते न थे
आश्चर्य है लखते परस्पर वे कभी थकते न थे



अति कठिनता से वे समय पाकर विपिन में पैठते
रख गोद में निज प्रेयसी के शीश प्रेमी बैठते
रोते हृदय दुख की कथा साद्यन्त कहना चाहते
पर शब्द रुक जाते मनों वे मौन रहना चाहते



फिर प्रेयसी पीयूष प्रेमी के श्रवण में घोलती
कर युद्ध शब्दों से कठिनता से तनिक सी बोलती
कहती:-"हहा ! दुख है 'हृदय-शशि ! अब मिले फिर कब मिलें
इस मिलन-वर्षा से न सम्भव है कि हृदय-सुमन खिलें"

यह है व्यथा दारुण तथा मैं सह नहीं टुक भी सकूँ
अविराम अश्रु प्रवाह को प्रियतम ! कहो कैसे ढकूँ ?
इस दुखमयी मर्य्याद का मुझको न मिलता अन्त है
अब अन्त पाते हैं अवधि का नहीं अन्त *अनन्त है''



उद्गार ये उसके अहो ! सहसा निकल पड़ते कहीं
उन्माद और विषाद से फिर 'भान' में रहती नहीं
वह युवक भी लखकर सहस्रों धार देता था बहा
'करुणा' तथा प्रिय 'प्रेमका जोड़ा' स्वयं बहथा अहा!



फिर भिन्न हो जाते हृदय होता निमग्न विषाद में
उन्मत्तता में, शून्य में, वे भान में, उन्माद में
यह तो अवस्था प्राथमिक थी-शीघ्र परिवर्तन हुआ
कुछही दिवस उपरान्त सुभग विवाहका बन्धन हुआ



थी प्रेम-धारा नित्य अतिशय वृद्धि ही पाती रही
प्रणयी प्रणयिनी की व्यथा कुछ समय को जाती रही
पर गृह-परिस्थितियाँ सदा उनको विवश करती रहीं
सम्मिलन-सुख प्रेमी-द्वयों का वे कभी हरती रहीं

* प्रेम ।

उस क्षणिक विरह वियोगमें भी थी अनन्त व्यथा भरी
थी शून्य-तर-नभ से भरी लगती उभय को शर्वरी
थे हृदय-दुःखोद्विग्नता दारुण न हा! जब सह सके
प्रेमी-प्रिया के नेत्र भी जब वारि-वर्षण कर थके



तब रोग-ग्रसित हुए प्रणयिनी रुग्ण किन्तु अधिक हुई
है खेद! खिलने से प्रथम मुरझा गई वह छुइमुई
प्रणयी हुआ जब स्वस्थ तब थी घोर दुख में प्रणयिनी
रवि-उदय हा तब हुआ जब मुरझा चुकी थी कमलिनी



विधिका विधान अटकतयाअनिवार्य्य ही होता सदा
जब नाथ पहुंचे कर गई थी स्वर्ग-गमन प्रियम्वदा
हा हन्त! पावक-मय प्रणयि को विश्व पड़ता दृष्टि था
नीरव निशा-निस्तब्धता में तिमिर होता वृष्टि था



उन्मत्तता परिणामतः प्रतिफलित प्रेमी को भई
अति-घोर-तर-तम-कूप में थी सृष्टि सारी गिर गई
उन्मत्त होकर नृत्य ताण्डव वह प्रणयि करने लगा
दुख सृष्टि में मानो नई दुख-सृष्टि सृज भरने लगा

वह तब शनैः बन ओर जाकर नेत्र से ओझल हुआ
गार्हस्थ्य के इस घोर दुखमय क्षेत्र से ओझल हुआ
पर वह विपिनमें ताक ऊंचे गिरि-शिखर पर चढ़गया
था रात्रिका काला तिमिर भी इस समय कुछ बढ़ गया



संसार चहुँदिशि शून्य काला और धुंधला हो गया
भीषण भयद विरहाग्नि से हृद्-ज्ञान जलकर खोगया
नीरव निशा थी घोरतम-मय थी निबिड़-निस्तब्धता
'सन सन' पवन-रव थी नथा सुख शान्तिका टुक भी पता



थी पवन रव भी कह रही उसके विरह-दुख की कथा
नक्षत्र, उल्का, गगन, गिरि, नद, में भरी बस थी व्यथा
तारे चमकते अश्रु-बूँदे बन रहे थे गगन के
वा थे विरह-उत्पन्न-क्रोधानल-सु-कण शशि-नयन के



वह थी पवन-रव वा अनन्त-निशा ध्वनित दुखगान थे
वा थी हृदय की आह वा वे विरह-व्यथा-बखान थे
'सां सां' पवन करती चली प्रेमी बदन पर से गई
नीरव निशा भी थी रुदन करने लगी हा! तममयी

ऊपर अनन्ताकाश था विस्तीर्ण नीचे सृष्टि थी
विक्षिप्त-वत् उसकी चतुर्दिक् घूमती वह दृष्टि थी
घन सघन सहसा गगन में आवृत कहीं से हो गए
जल-कण लगे झरने व्यथामयभाव अब उमड़े नए

आभास होता है प्रकृति को भी दया थी आ गई
जलते हृदय पर वारिकण-वर्षण प्रकृति-इच्छा भई
वे बिन्दु नैसर्गिक-दया थी प्रकृति का दुख-रुदन था
वा मुख छिपा घनमें रुदन वन् कर रहा हा ! गगन था

वा प्रेम की भीषण-वियोग-छुरी-भरा यह रक्त था
जलते मनुज को जो जलाने प्रेम द्वारा त्यक्त था
हा ! प्रेम निष्ठुर यह वियोग-व्यथा हुई क्यों आप में ?
प्राधान्य तव सुख में कहें हम ? वा कहें सन्ताप में ?

उद्भ्रान्त को चहुँ ओर व्याकुलता भरी अविश्रान्ति थी
हृद्राज्य में उत्क्रान्ति थी क्षणभर न मिलती शांति थी
थे सूख आँसू भी गए उन्मत्तता चढ़ती चली
विरहाग्नि की जलती हुई ज्वाला वहाँ बढ़ती चली

उन्मत्तता में दुख विरह के गीत वह गाने लगा
निज आह से वह शैल, वन, पाषाण झुलसाने लगा
था काल-दुख-सागर अहो ! थी कालरात्रि डरावनी
थीं तरल व्याकुलता तरङ्गें भयद भीषणता घनी



पश्चात् कुछ घन हट गए चन्द्रागमन सुखप्रद हुआ
पर हा ! उसे वह भी अनल-कण-धारका दुखनद हुआ
वह श्वेत-ज्योतिर्मय-सुधा-धारा बहाने निज लगा
निशिकान्त का कर किन्तु छूकर दुख अधिक उसका जगा।



अब चन्द्र अपनी चन्द्रिका से अश्रु बरसाने लगा
स्नेही-हृदय में शान्ति क्या ? अधिकाग्नि भड़काने लगा
जल कण गगन से गिर रहे थे किन्तु शीतलता कहाँ ?
है बस विपति आती जहाँ—विपरीत सब होते वहाँ



कोई दिखावे यदि दया जब जन विपति-उद्भ्रान्त हो
ते सान्त्वना मिलती बहुत है और चित भी शान्त हो
पर प्रीति की प्रिय नीति में यह रीति ही विपरीत है
कितने दुखद जल-बिन्दु हैं ? ये अखिल कथनातीत है

हमने सुना है 'जो किसी को कष्ट देता है कहीं
वह शत्रुता का बीज बो देता अहो! दुखमय वहीं'
पर 'प्रेम' जिसका अधिक जितना कष्ट देता दुष्ट है
उतना अधिक वह प्रेम प्रेमी का बनाता पुष्ट है



यह शक्ति-आकर्षण तुम्हीं में प्रेम है! तुम धन्य हो
अतएव तुम ही अग्रगण्य, अपूर्व और अनन्य हो
कितनी प्रबल दृढ़ शक्ति तेरी है बता सकते नहीं
तू है अमूल्य—अमूल्य को क्या मूल्य कर सकते कहीं



शृङ्गार-रस ही आपका है प्रेम! गुण-प्रधान है
वात्सल्य, करुणा भी तुम्हींसे पा रहे सम्मान हैं
बीभत्स, रौद्र परन्तु तुम से प्रेम! होता प्राप्त है
गुण आप से यदि प्राप्त है तो दोष भी पर्य्याप्त है



जो रङ्ग तेरे में रँगा—संसार उसको व्यर्थ है
वह स्नेह-सत्ता ज्ञान की ही प्राप्ति-हेतु-समर्थ है
उसका मनोरञ्जन किसी भी ओर में होता नहीं
आसक्त-जन को 'इष्ट' के अतिरिक्त क्या भाता कहीं!

हा-अस्तु-'प्रेमी' निबिड़ तम में इक गुफा के सामने
होकर शिला-स्थित वह लगा अतिऊष्ण 'आहें' त्यागने
हिलने लगा मानो नभोमण्डल हृदय की आग से
उन्मत्त फिर हँसने लगा हृद के अपूर्व विराग से



फिर मौन होकर देखने वह स्वप्नसा मानो लगा—
है एक नीलाकाश में दिवसेश ज्योतिर्मय जगा
निज रश्मियों से वह प्रभा का पुञ्ज है बरसा रहा
जो निम्न सागर में सिमट चहुँओर से है आ रहा



सागर-सलिल मानो प्रभा से लालिमा-मय हो गया
पर अंश उसके मध्य का कुछ कालिमा-मय हो गया
उस कृष्ण-सलिल-विभागमें 'पङ्कज' प्रभा-मय खिलउठा
ब्रह्माण्ड आसागर-धरातल और नभ भी हिल उठा



वह कमल फिर जल पर शनैः विस्तीर्णता को पागया
शुभ शान्तिमय शशि एक अति सुन्दर उदित उस पर भया
उस शुभ्र निर्मल चन्द्र की कमनीय प्यारी चन्द्रिका
विस्तृत लगी करने उदधि पर कौमुदी-मयि-यवनिका

उस कौमुदी-मयि-चन्द्रिका-धर-चन्द्र में मन-मोहनी—
करुणामयी पर पीत कोमलतामयी-छवि सोहनी—
होने लगी अभ्युदित मानो 'प्रेम' की प्रति-मूर्ति थी
वह खिल उठा-मानो विरह-दुख की वहीं सम्पूर्ति थी



पर एक और अपूर्व अद्भुत छवि वहाँ प्रकटित भई
जो थी मधुरता, सरसता-सौन्दर्य्य, निर्मलता-मयी
वह पुरुष था, था प्रभा-मण्डल शीश के पीछे वहाँ
ऐसा अनन्त-स्वरूप 'प्रेमी' ने अहो ! निरखा कहाँ ?



उसके प्रभामयशीश पर था एक मुकुट प्रभा—भरा
वह*प्रकृति-कर-निर्मित पुरुष के शीश ऊपर था धरा
प्रथमोक्त 'छवि' को वह पुरुष था निज कर-द्वयमें लिए
था कमल के ऊपर खड़ा उसको प्रणयि-अभिमुख किए



अब वह मुकुट-धर मूर्ति ज्योतिर्मय लगी कुछ बोलने
उस विषम व्यथा विषाद में मानो अधिक दुख घोलने
कुछ अधर हिल यों बोलने का उपक्रम करने लगे
मानो सघन घन-गर्जना से गगन को भरने लगे

* मुकुट से०

"सन्तप्त-हृद् ! प्रेमी ! न तुमको वस्तु यह फिर मिल सके
प्रेमोत्पन्न-विरह-व्यथानल-दग्ध-कुसुम न खिल सके
हो शान्त अब तुम प्रेम प्रतिफल धैर्य से प्रेमी ! सहो
हा ! प्रेम-पुष्प-प्रभा 'विरह' है दुख अमित जिसमें अहो ?



कृत-कर्म्म-प्रति-फल-भोग करना सभी को अनिवार्य है
तब क्यों कहो ! यह खेद कर होता तुम्हीं को कार्य्य है"
वे मूर्तियाँ पङ्कज सहित अदृश्य हुई तभी वहीं
वे अकथनीय प्रभा सुछवियाँ ज्योतियाँ जाती रहीं



पर हा ! करुण रस में सनी जो प्रेम की प्रतिमूर्ति थी
जो विरह दुख परिपूर्ति थी, जो स्नेह-हृदयस्फूर्ति थी
उसकी सुगमन-समय विरह दुख से भरी जो दृष्टि थी
शोकाग्नि से जलती रही उसकी अभीतक सृष्टि थी



अदृश्य वह रविकाल-सागर दिप्ति-कर भी होगया
फिर अंतमें वह जलधि भी निशि-निविड़-तममें खोगया
वह, और, प्रेमी भी जगा रजनी-तिमिर लखने लगा
(प्रेमी-विरह-दुख-क्योंकि-लखकर था निशापति भी भगा)

थी, अस्तु, कृष्ण निशा नयन निज फाड़ भीषण बन रही
निज पाणि, और नचा पवनमें नृत्य करती थी वही
'हू हू' पवन करती उधर प्रेमी बदन पर बह गई
दुख की व्यथा की सब कथा मानो पुनः वह कह गई



अब अश्रु वर्षण अरुक प्रेमी के नयन से हो चला
प्रेमाश्रु-सोता तीव्रगामी भी कहीं रुकता भला ?
वह अश्रु-धार अनन्त में दुख-हृदय का होने लगा
गिरिवर-शिला क्या विश्वको वह स्वाश्रुसे धोने लगा



"प्रेमी ! नरो" बोली पवन "यह प्रेम का परिणाम है–
क्या व्यथित अश्रु प्रवाह में मिलता तनिक विश्राम है ?"
नीरव रहा पर वह-निबिड़-तम हृदय में भी था भरा
मरु-भूमि वह था सर्वथा जो क्षण प्रथम थी उर्वरा



चाञ्चल्य-शून्य-विलोचनों से देखने तब वह लगा
आकाश, वारिद, वारि, चपला श्यामघन-प्रियता-पगा
गिरि, विपिन, सागर, और सारी सृष्टि प्रेमाघात में
उसने लखो जैसे कि करती भ्रमण झञ्झावात में

'साँ साँ' हुई फिर पवन सिर पर से उतर उसके गई
कुछ कान में वह दुःख-गाथा गई कह मानो नई
फटने लगा प्रेमी-हृदय अब अधिक सहन न कर सका
दुखभार भारी था अतः वह अधिक वहन न कर सका



होकर शिला पर वह खड़ा लखने लगा तममयि-निशा
अतिगाढ़ तिमिराच्छन्न भीषण हो रही थी सब दिशा
आमोघ-गर्जन स्तब्धता उस रात्रि की था तोड़ता
वह विश्व-वक्षस्थल मनो निज क्षोभ से था फोड़ता



चपला चमक उट्ठी-छुरी थी मेघ की मानो यही
थी प्रकृति मानो प्रेम-वध-हित क्रोध से पैना रही
नरकाग्नि का था कुण्ड प्रेमी के लिये चहुँओर ही
ज्वाज्वल्यमय ज्वाला भयानक जल रही थी घोर ही।



बढ़ती हुई वह धार उस पर अग्नि की आने लगी
दुःख की अनन्तों मूर्तियाँ फिर सामने उसमें जगीं
काली भयानक सूरतों के हाथ में दो दंड थे
जो उच्च थे अत्युच्च थे यम-दंड-सम उद्दंड थे

था दंड हृय के मध्य काला एक वस्त्र लगा हुआ
कुछ भाग उसका श्वेतता से था परन्तु जगा हुआ
अङ्कित वहाँ था "विषम-विरह-विषाद-विकृत-वेदना"
इस वाक्य में ही था अमित-सन्ताप-भाषण दुखघना



दुख से सनी वह अग्निरूपी रक्त-धारा बढ़ चली
था घोर भीषण यन्त्रणामय दृश्य-पर शोभा भली
फिर कृष्ण-रजनी कृष्णलोचन फाड़ करती नृत्य थी
करके पवन-रव-गान दुख के हो रही कृत-कृत्य थी



उस भयद भीषण कल्पना में उच्च भूधर-शिखर से
था एक 'वस्तु' पतन हुआ कुछ शब्द करके अधर से
मानो—"तुम्हें हे प्रेम ! यह लो आत्म-अर्पण है किया
पालित तुम्हींसे यह शरीर हुआ तुम्हीं को लो दिया"



प्यारी ! ठहर-मैं आ रहा हूँ-यह 'विरह' क्या वस्तु है—
जो कर वियुक्त सके ? तुम्हारे निकट यह हृद् अस्तु है"
यों कह अपरिमित-तिमिर में भीषण दशा में रूप में
वह जा पड़ा शत-तम-पटल नीचे तिमिरमय कूप में

यों अन्त दोनों प्रेमियों का प्रेम में ही हो गया
आत्मा अमर थी पर शरीर सदा सदा को सो गया
प्रेमोत्पन्न-विरह-व्यथा से काल-कवलित वे भये
हैं प्रेम-तरु पर नित्य खिलते सूखते परिमल नये



कैसे कहूँ तुलना तुम्हारा ? ध्यान में आता नहीं
तुम दुःखमय हो किन्तु तुम बिन और कुछ भाता नहीं
कितना बुरा तुमको कहें कुछ अन्त ही पाता नहीं
अव्यक्त-गुण वर्णन बिना भी पर रहा जाता नहीं



तुम हो विचक्षण–'क्रूरता' 'करुणा' तुम्हीं में साथ हैं
'क्षमता' 'हृदय-उद्विग्नता' दोनों तुम्हारे हाथ हैं
तुम प्रेम ! अति 'असहिष्णु' हो तुम 'सहन-शील' अपार हो
तुम 'हृदय-भूषण' हो तुम्हीं प्रिय और हृद् के भार हो



गोस्वामि-शब्दों में तुम्हीं "एकान्त जनकी चाह है
कर प्राप्त तुझको कुछ न रहती शेष मन की चाह है"
तू है अनिर्वचनीय-सुख संयुक्त प्रेमी के लिये
आनन्द तू अव्यक्त है दुख-युक्त प्रेमी के लिये

आत्मीयता हृद्-गाढ़-सम्मेलन तथा सन्मित्रता
तुम में-जलन, नैष्ठुर्य्य भी–ओहो! अपार विचित्रता!
जीवन-सफलता हो तुम्हीं कर्तव्य परता हो तुम्हीं
तुम उच्च आत्म-ज्ञान हो औ हृद् अचलता हो तुम्हीं



निःस्वार्थ-सेवा-विश्व की करना तुम्हारा काम है
दुख और सुख यह व्यक्ति-गत-अदृष्ट का परिणाम है
समदृष्टि जनता पर तुम्हारी है सदा समता-भरी
पीयूष नद रहती प्रवाहित आपकी ममता-भरी



जीवन-सुमन में यह सुरभि है प्राप्त जिस जनको नहीं
वह हो न सकता भिज्ञ सुख दुख की 'कद्र'*से जन कहीं
आराम का अभिराम यदि है प्राप्त तो विश्राम है
पर दुःख यदि है तो अहो! यह जन्म ही निष्काम है



वह मुक्ति क्या? कोई सुगति का भी न अधिकारी अहो!
निष्प्रेम जीवन में भला करुणा कहीं होगी? कहो?
करुणा अभाव जहाँ वहाँ क्या 'क्रूरता' होगी नहीं?
वह क्रूर-दोषाकर-मनुज क्या सुगति पा सकता कहीं?

---

* मूल्य—ले० ।

संसार के हो सार! तुम इस सृष्टि की सम्पत्ति हो
हो विश्व के आधार तुम ही शान्त रस-उत्पत्ति हो
सहयोगिता, सहकारिता के ऐक्य के तुम प्राण हो
अतएव देशोन्नति-दशा भी तुम बिना मृयमाण हो



जबतक परस्पर प्रेममय सब हृदय होवेंगे नहीं
पारस्परिक निज भिन्नता जबतक कि खोवेंगे नहीं
जब विश्व-व्यापी-प्रेम से जग—और सोवेंगे नहीं
नैर्बल्य-आँसू-धार से रो स्वमुख धोवेंगे नहीं—



अर्थात्-जब बँध जायँगे हम प्रेम के दृढ़ पाश में
उत्थान का पथ आ सकेगा बस तभी सुविकाश में
जब स्नेह-शक्ति-सबल प्रबलता हृदय में भर जायगी
उत्थान-गति तब स्वयं ही प्रत्यक्ष में आजायगी



निज जाति-उन्नति, आत्म-उन्नति भी इसी से प्राप्य हैं
है एक दुर्गुण तो सुगुण परिमाण अमित अमाप्य हैं
साम्प्रतिक सांसारिक-परिस्थिति यहाँ पूर्ण प्रमाण हैं
इसके बिना ही तीक्ष्ण चलते द्वेष के नित बाण हैं

प्रेमी जनों को तू उठाकर उच्च देता है बना
करुणार्द्र उनको-तू बना करता अहो ! उन्नत-मना
पर-हित-निरत, दानी, सुशील, उन्हें बनाते प्रेम हो
सच्चरित भी तुम हो सिखाते, और उनको नेम हो



बस अन्त में कह 'विश्व-नाटक' हो तुम्हें हम मौन हैं
ऋषि तक थके गाथा तुम्हारी गा-भला हम कौन हैं ?
अन्तिम विनय है आपसे "सब विश्व को अपनाइए—
निज कर दृष्टि हटा यहाँ संयोग-सुख सरसाइए" ।

"उपसंहार"

हे विश्व पति ! अखिलेश ! भारतवर्ष द्वेष नशाइए
इस प्रेम को अमृतमयी जल-धार अब बरसाइए
दिन दिन चले जाते रसातल को-सहारा दीजिए
हम पतन-गर्तावर्त हैं-कर पकड़ बाहर कीजिए



जिस ज्योति की जागृत-प्रभासे विश्व उज्वल होसके
जिस रत्न को पा मनुज हृद्-मल-अकिञ्चनता खोसके
जो तम-मयी रजनी सदृश हृद्-कृष्णता भी धोसके
तन्द्री निरुत्साही-हृदय को कर मनरची जोसके

उस उच्च सच्चे स्नेह का प्रिय पाठ प्रभो ! पढ़ाइए
गत भारतीयादर्श पर निज कृपा ओप चढ़ाइए
उस प्रेम का पीयूष-पान पुनः सहर्ष कराइए
उस प्रेम-परिमल की अलौकिक सुरभि पुनः उड़ाइए

अमृतमयी वह चन्द्रिका वह कौमुदी छिटकाइए
उस मनुज जन्मोद्देश में इस हृदय को अटकाइए
वह शान्ति-मार्ग, मनुष्य-जीवन-फल प्रकट में लाइए
वह मधुर मोहन गान कानों में पुनः गा जाइए



सन्तोष-सदन, मनुष्य हृद्-सन्तृप्ति, पथ दिखलाइए
उस विश्व-जीवन-प्राण का दर्शन प्रदान कराइए
जिसके बिना सम्राज्य-जीवन भार सा है भासता
वह भेट भारतवर्ष के कर दीजिए सुख शाश्वता



हा ! नष्ट सामाजिक सु-जीवन प्रति दिवस ही होरहा
विद्वेष के तम-कूप में भारत पड़ा है सो रहा
हैं सूर्य, चन्द्र, गगनवही भारत न हा ! पर वह रहा
अब भी हिमालय हा कभी रो दुख-कथा यह कह रहा

पर हाय ! कारण कार्य्य के साफल्य का मिलता नहीं
कारण बिना क्या कार्य हो ? सुम ऋतु बिना खिलता नहीं
वह ज्ञान-लोचन-ज्योति, भोला किन्तु 'प्रेम' न है यहाँ
उत्थान-मूल बिना भला उत्थान हो सकता कहाँ ?

प्रेमेष्ट-देव ! सु-प्रेमवृष्टि यहां चतुर्दिक् कीजिए
प्रति भारतीय-हृदय अलौकिक प्रेम से भर दीजिए–
कर प्रेम भारत में प्रकट यश विश्व-व्यापी लीजिए–
स्नेहाभरण से जगत्-माता भारती सज दीजिए–

जय विश्व-पोषक ! विश्व-पति ! जय भारती ! जय प्रेम की
जय सौख्य-सागर ! प्रेम आगर ! जयस्थायी क्षेम की !
जय मातु भारत ! देववाणी नागरी ! संयोग की !
जय जय स्वदेश ! स्वजन्मभू ! जय जन्म-फल-उपभोग की

प्रिय प्रेमियों को, स्नेह-सदनों को, सदा जयकार हो !
उन प्रेमियों को प्रेम का स्वीकार यह उपहार हो
हो प्रेम का बिस्तार चहुँदिशि, प्रेम-ध्वनि-सञ्चार हो
कह 'ॐ शान्ति' विनय करें 'सब दूर भारत भार हो'

ॐ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

इति स्नेह-समर्पणमस्तु ।

प्रेमियों को क्या भला सिद्धान्त सिखलाना कहो ?
स्नेह का सिद्धान्त ही सर्वोच्च है अनुपम अहो !



यह 'प्रेम' परिभाषा अलौकिक और कथनातीत है
यह है पुरातन राग औ यह नित्य ही नवगीत है



यह है नभोमण्डल जहाँ स्वर्गीय सुन्दर शान्ति है
पर हा ! इसी में भर रही बेपार हृदयोद्भ्रान्ति है



है बस यही सुख-मूल उन्नति की, यही उत्थान है
प्रेमी बनो, फिर आप से कोई न उच्च महान है

लेखक और प्रकाशक
कन्हैयालाल जैन ।
स्नेह सदन. कस्तला, पोष्ट हापुड़

बाबू विश्वम्भरनाथ भार्गव के प्रबन्ध से स्टैन्डर्ड प्रेस, इलाहाबाद में छपा ।

* वन्देजिनवरम् *

हितकी बात।

ट्रैक्ट नं० ३०

आप पढ़िये

और मित्रोंको सुनाइये।

मिलने का पता:—

चन्द्रसेन जैन वैद्य, मंत्री

जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा—इटावा।

(भिंडके मेलेमें विनामूल्य वितरण)

Printed by P. Brahmadeva Sharma
at the Brahma Press, Etawah.

भजन ।



सुनो भाई सब मिल हितकी बात ॥ टेक ॥
बिन विद्याके इस नरभवमें निष्फल जीवन जात ।
पढ़ो पढ़ावो सब मिल भाई ये ही सुखकी बात ॥ १ ॥
बाल वृद्ध अनमेल व्याह तज अरु वेश्याकी घात ।
व्यर्थ व्यय तज जाती रक्षा कर जो चहो कुशलात ॥ २ ॥
गोलारारे गोलसिंघारे और खरौआ जात ।
सब लमेचू मिलो बुढ़ेले आपसमें सब भ्रात ॥ ३ ॥
शुद्धाचरण करो निश दिन तजि पंच पापकी घात ।
आपसमें हिल मिलकर कीजे जात्युन्नतिकी बात ॥ ४ ॥
नारायण बलभद्र चक्रधर तीर्थंकर विख्यात ।
उनकी ही सन्तति होकर तुम अब क्यों डूबे जात ॥ ५ ॥



वन्दे जिनवरम् ।

हितकी बात



प्यारे भाइयो ! आज हम आपको एक आप के हित की बात सुनाते हैं आशा है कि आप उसे सुन कर विचार करेंगे और पीछे उसी अनुसार काम करके लाभ उठावेंगे ।

इस मेले में बहुधा भद्रवर (भदावर) देश के निवासी तथा उन के दूसरे जगह के सम्बन्धी गोला-रारे, गोलसिंघारे, खरौवा, लमेचू और थोड़े से शा-यद बुढ़ेले भी इन पांच गोटों के आदमी ही बहुत इकट्ठे होते हैं । इस लिये हम वही बात कहेंगे जो आप लोगों के ही सम्बन्ध की तथा आप के ही हित की हो ।

यह बात हमारे किसी भी भाई से छिपी नहीं है कि हमारी अवस्था जैसी चाहिये वैसी अच्छी नहीं है । रोजगारमें, हालमें, शारीरिकबल में, विद्या में धनमें धर्ममें सभी बातों में हीनता ही दिखाई देती

कुछ भी उन्नति नहीं कर सकते हैं यहां तक कि उन्हें किसी बड़े आदमीसे या हाकिमसे बात करना भी नहीं आता है । उठने बैठनेकी भी अकल नहीं आती है यह कितने शर्मकी बात है । भाइयो ! लड़कोंकी शोभा गहना पहनानेसे नहीं होती है उनकी शोभा विद्यासे ही होती है ।

बहुतसे हमारे भाई यदि लड़कोंको कुछ पढ़ाते भी हैं तो मंगल पूजा पाठ विनती या थोड़ा सा हिसाब किताब या चिट्ठी पत्री पढ़ लिखनेके लायक हिन्दी या थोड़ी सी मुड़िया पढ़ाकर अपने लड़कोंको कृत कृत्य समझने लगते हैं । यह बड़ी भूलकी बातहै। इतनी विद्यासे उसको न तो कुछ धर्म ही का ज्ञान होता है और न कुछ कर्म (सांसारिक कार्य) का ही ज्ञान होता है वह पढ़ा अनपढ़ा बराबर ही है ।

बहुतसे लोग इस बातकी शिकायत किया करते हैं कि क्या करें हमारे लड़कोंको पढ़नेका कोई साधन नहीं है परन्तु यदि विचार किया जाय तो यह बात उन लोगोंकी एक बहाने मात्र है जो लोग विद्याके

प्रेमी होते हैं वे अनेक कठिनाइयां झेलकर भी विद्या पढ़ते पढ़ाते हैं। इस लिये जिस गांवमें जैनियोंके दश से अधिक घर हैं उन्हें अपने गांवमें सब लोगोंको मिलकर एक पण्डित रखकर सब लड़कोंको पढ़ाना चाहिये और जहां थोड़े घर हैं उन्हें अपने पासके मौजे में लड़कोंको पढ़ानेके लिये भेजना चाहिये और जहां पर सरकारी मदर्से हैं वहां लड़कोंको मदर्सोंमें पढ़ाना चाहिये। हमने देखा है कि जहां पर पाठशाला या सरकारी मदर्सा है वहांके लोग भी अपने लड़कोंको नहीं पढ़ाते हैं। इससे अब हम लोगोंको विद्यासे प्रेम करना चाहिये और ऐसा विचार करना चाहिये कि हमारा कोई भी लड़का विना पढ़ा न रह जावे॥

इस तरह थोड़ी सी शिक्षासे भी हमारा काम नहीं चलनेका है इस लिये भिंडमें एक बड़ा विद्यालय भी खुलना चाहिये। जैसा कि मथुरा, बनारस, मुरैना, हस्तिनापुरमें हैं और जैसा कि एक जैपुरमें भी था। इसमें छोटी २ पाठशालायें और मदरसोंके पढ़े हुये लड़के भर्ती करना चाहिये और उन्हें ऊंचे

दर्जेकी शिक्षा देना चाहिये। उसीके साथ विद्यार्थियों के रहनेके लिये भी एक स्थान (बोर्डिंग हाउस) होना चाहिये कि जिसमें दूसरी जगहोंके आये हुये विद्यार्थी रहें और पढ़ें। उनके खाने पीने का भी वहीं प्रबन्ध होना चाहिये जैसा कि और विद्यालयोंमें है। इससे भी ऊंचे दर्जेकी शिक्षा यदि देना चाहें तो दूसरे जगहोंके मुरैना, बनारस आदिके विद्यालयों में लड़कोंको भेज देना चाहिये। इस तरह विद्याका पठन पाठन होनेसे हम लोगों के देशका उद्धार हो जायगा। चारों ओर पण्डित ही पंडित दीखने लगेंगे और जातिकी तथा धर्मकी जैसी उन्नति चाहिये वैसी उन्नति हो जावेगी। हम लोगोंके सब दुःख दरिद्र दूर हो जावेंगे॥

स्त्री शिक्षा।

भाइयो! बालकोंकी भांति कन्याओंको भी पढ़ाना लिखाना चाहिये। वगैर स्त्री शिक्षाके भी हमारी उन्नति होना दुर्लभ है! देखिये विना शिक्षाके स्त्रियां अपने घरका काम ठीक २ नहीं कर सकती हैं

घरकी रक्षा धनकी रक्षा शरीरकी रक्षा बच्चोंका पालन पोषण बिना शिक्षाके नहीं कर सकतीं अपने हित अहितको पहिचान नहीं कर सकतीं। बिना शिक्षाके विधवा हो जाने पर बड़ी मुश्किल पड़ती है जीवन निर्वाह करना कठिन हो जाता है। कोई २ बिना सत् शिक्षाके अनेक पाप कर्म करने लगती हैं। इससे स्त्री शिक्षाकी बड़ी जरूरत है। परन्तु स्त्री शिक्षासे केवल यही मतलब नहीं है कि उन्हें सिर्फ पढ़ाया तथा लिखाया ही जावे। नहीं पढ़ाने लिखानेके सिवाय उन्हें धर्म शिक्षाकी, सीने, पिरोने, कसीदा काढ़ने, भोजन बनाने, बच्चोंका पालन पोषण करने, मनोविनोद करने आदिकी शिक्षाकी भी बहुत जरूरत है बिना उसके केवल पढ़ाना लिखाना ही कार्यकारी नहीं है। इसलिये भिंड में एक कन्या पाठशाला भी जरूर खुलना चाहिये।

भाइयो! यह विद्या पढ़ना पढ़ाना आपके हितकी पहली बात है आशा है कि आप इसकी जरूर प्रवृत्ति करेंगे॥



२—कुरीति निवारण ।

हमारी इन पांच गोटोंमें बहुतसी ऐसी सत्यानाशी कुरीतियां घुसगई हैं कि जिनके कारण हम बराबर धन, धर्म और बलसे रहित होते जाते हैं। प्रति वर्ष इनकी वदौलत एक दो घर बिगड़ जाते हैं। इस लिये जब तक हम अपनी जातिसे इन कुरीतियों को दूर न करेंगे तब तक हम अपनी कुछ भी उन्नति नहीं कर सकते हैं। यहां पर हम उन कुरीतियों का वर्णन संक्षेपसे किये देते हैं विशेष जिस भाईको देखने की इच्छा हो हमारी बनाई "कुरीति निवारण" नामक पुस्तक जो कि एक पैसेमें मिलती है, मंगाकर पढ़ें।

१—बाल विवाह ।

छोटे २ बालक बालिकाओंका विवाह कर देनेसे जो हानि होती है वह हमलोगों के सामने प्रत्यक्ष है। बालक बालिकाओंका मूर्ख रहना, कमजोर रहना, सदा रोगी रहना, सन्तान न होना, यदि होवे तो शीघ्र मर जाना या सदा बीमार रहना, गर्भपात होजाना आदि अनेक हानियां हैं कि जिनके कारण हमलोग तबाह

हो रहे हैं। बाल विवाह होनेके कारण ही छोटे २ बच्चोंकी सगाई होजानेकी भी चाल चल पड़ी है, यहां तक कि कोई कोई तो पेट में ही सगाई कर देते हैं। इससे भी बहुत हानि होती है। छोटेपनमें सगाई हो-जाने पर फिर विवाह करना ही पड़ता है। चाहे बालक बालिका रोगी होजावें या बदचलन हो जावें चाहे अंधे या काने हो जावें, चाहे लूले या लंगड़े हो जावें, चाहे गूंगे या बहरे हो जावें, चाहे मूर्ख रहजावें चाहे निर्धन हो जावें इस लिये जब तक बालक बालिकाओंके गुण अवगुण प्रगट न होजावें तब तक सगाई न करनी चाहिये। सयाने होजाने पर सगाई और विवाह करना चाहिये। छोटेमें सगाई होजाने पर पीछे कोई खोट होजाने पर आजकल सगाई फि-रनेके कारण लड़ाई झगड़े भी होने लगे हैं जोकि बड़े हानिकर हैं। यदि सयाने में लड़का लड़की को देख-कर सगाई की जावे तो फिर इस झगड़ेकी नौबत क्यों आवे। इस लिये बालकका विवाह पन्द्रह वर्षसे कम की उम्रमें और बालिकाका विवाह बारह वर्षसे कम की उम्रमें कभी नहीं करना चाहिये॥

२-अनमेल विवाह ।

बड़ी लड़कीके साथ छोटे लड़केका विवाह कर देनेका नाम अनमेल विवाह है। इससे भी बड़ी हानि होती है । पहिले तो माता पिता लड़का लड़की की छुटाई बढ़ाईका कुछ खयाल न करके केवल रुपयेवाला घर देखकर विवाह कर देते हैं परन्तु जब बड़ी बहू घरमें आती है और उसके सामने लड़का बौना दिखाई देता है तब उसे खूब दूध छहारे पिला २ कर बड़ा करना चाहते हैं परंतु जैसे भेड़ियेको देखकर बकरी नहीं पनपती है उसी भांति उस छोटे लड़केको वह बड़ी बहू भेड़ियेके समान ही दिखाई देती है । इसका परिणाम बहुत बुरा यह होता है कि लड़केकी बुरी हालत हो जाती है वह रात दिन चिन्तित रहता है, रोगी होजाता है, कोई २ शर्मके मारे आत्महत्या भी कर डालते हैं । ऐसी हालतमें स्त्रियां प्रायः व्यभचारिणी भी हो जाया करती हैं । इस लिये यह अनमेल विवाह कदापि करना योग्य नहीं है ।

३—वृद्धविवाह।

छोटी २ बालिकाओंका विवाह पचास २ साठ २ वर्ष के बुड्ढों के साथ कर देना कितने अन्यायकी बात है कि जिस का कुछ ठिकाना नहीं है। इस तरह यदि किसी बालक के साथ एक बुड्ढीका विवाह कर दिया जाय तो क्या आप उसे अच्छा समझेंगे। नहीं २ यह बड़े कष्ट और घोर अन्याय की बात है। यह विवाह बालिका को मृत्युसे भी अधिक दुखदाई है बुड्ढे के थोड़े दिनों में चल बसने के बाद बिचारी बालिका की जो दुर्दशा होती है उसे जो महान्दुख होता है वह आप लोगों ने कई जगह प्रत्यक्ष देखे होंगे यह केवल कहने की बात नहीं है किन्तु रात दिन की भुगती हुई बातें हैं। क्या यह हालत देखते जानते हुये भी आप के दिलों में कुछ भी चोट नहीं लगती है यदि लगती है तो दया धर्म के पालको! क्यों नहीं इस का कोई शीघ्र उपाय करते हो। भाइयो! भूलकर भी कभी ३५ या ४० वर्ष से अधिक की उम्र में विवाह नहीं करना चाहिये।

४—कन्याविक्रय ।

इसी वृद्धविवाहकी बदौलत इस हत्यारी कन्याविक्रय की रीति चल पड़ी है। खेद है आजकल लो घोड़े बैल की भांति बिचारी कन्याओं को सौदा की जाती है। कन्या बिचारी चाहे कल ही रांड होजाय जन्म भर भूखों मरे चाहे बड़े २ दुःख सहे परन्तु हत्यारों को अपनी थैली भराने से मतलब, हाय! हाय! जिस कन्या को जो मातायें नौ महीने पेट में रखकर बाद में कितने कष्ट से पालती पोषती हैं। जिन माताओं के खून से और जिन पिताओं के वीर्य्य से कन्या की सृष्टि होती है अफसोस वही माता पिता अपनी प्राणों से प्यारी कन्या के सुख दुःख का बिना विचार किये थोड़े से धनके लालच में पड़कर घोड़े बैल की भांति कन्या को बेंच देते हैं भाइयो! याद रखो इस पाप से आप की कभी मुक्ति नहीं हो सकती है यह बुरी हालत इन्हीं पाप कर्मों का परिपाक है। इस लिये भूलकर कभी स्वप्न में भी कन्याविक्रय का नाम भी न लेना चाहिये।

और यह निन्द्य कार्य जो करते हैं उन्हें पंचायत से रोकना चाहिये यदि न मानें तो दण्ड देना चाहिये। जाति से बाहिर कर देना चाहिये। उस से किसी प्रकार का व्यवहार नहीं रखना चाहिये। इस से जाति की बदनामी होती है और इस पापसे जाति बराबर रसातल को पहुंचती जाती है।

५—वेश्यानृत्य।

जहां पर बूढे, जवान, बालक, बालिका, स्त्री आदि सभी बैठे होते हैं उन सब के बीच महफिलमें वेश्या का नचाना मानों व्यभिचार की शिक्षा देना है। वेश्या को रुपये देना मानों मद्य, मांस का खिलाना और गोहत्या करवाना है। वेश्याका प्रसंग करना मानों बड़ी मिहनत से कमाये हुये अपने धन को फेंक देना है और शरीर में आतिश, सुजाक, प्रमेह, गठिया आदि प्राणनाशक भयंकर रोगों का लगाना है। इस लिये भूलकर भी कभी किसी प्रकारसे भी वेश्याका संसर्ग नहीं करना चाहिये। हर्षकी बात है कि एक वर्ष इसी मेले में हमारे निवेदन करने पर बहुत से भाइयों ने वेश्या का

त्याग कर दिया था। अत्यन्त हर्ष है कि उस प्रतिज्ञा का हमारे भाइयोंने बहुत कुछ निर्वाह भी किया है। परन्तु अनेक धनी मानी धनसे मदोन्मत्त हुये लोग अब भी इसका त्याग नहीं कर सके हैं इस लिये अब पुनः प्रार्थना है कि वे भाई भी अपने बच्चों पर, अपनी जाति पर, अपने धन पर, अपने धर्म पर दया करके वेश्याका त्याग शीघ्र ही करदें। क्योंकि वेश्या के सिवाय अनेक हानियोंके लाभ कुछ भी नहीं है।

६—व्यर्थ व्यय।

देश, परदेशमें रहकर, धूप, ओश, शरदी, गर्मी सहकर, पसीना बहाकर, लदानाकरके, बंजी करके, खेती करके, इत्यादि रातदिन अनेक प्रकारके कष्ट सहकर कौड़ी २ जोड़कर जिस धनको इकट्ठा करते हैं खेद है कि उसी प्राणोंसे प्यारे धनको हम लोग विवाह शादियोंमें, पूजा आदिमें पानीकी तरह बहा देते हैं। विचार करके यदि देखा जाय तो हम लोगोंका धन पूजा और विशेषतः विवाहमें ही प्रायः फिजूल खर्च होता है।

विवाहमें वेश्या, आतशबाजी, फुलवारी, भूर बखेर आदिमें तो फिजूल खर्च होता ही है परन्तु चवेनीकी फिजूलखर्ची बहुत बुरी है। यह रीति सिवाय हम लोगोंके और किसी जातिमें नहीं है। गोलापूरे, गोलसिंघारे इन दोनों गोटोंमें प्रायः चवेनीकी एकसी रीति है। देखिये हमारे घर यदि कोई महमान आवे तथा घरसे कलेऊ बांध लावे और हमारे घर पर आकर खावे तो हमें कितनी शर्म मालूम होगी परन्तु विवाह सरीखे कार्यमें हमारे महमान अपने घरसे चवेनी लाकर हमारे घरमें आकर खाते हैं यह कितनी बड़ी शर्मकी बात है। दूसरे जब दोपहर तक लोग चवेनी करके उठते हैं और हाल ही लड़कीके दर्वाजे ज्योनारमें जाते है तो सब मिठाई योंही पड़ी रहती है और भंगीका घर भरा जाता है। फिर जब वरात की विदा हो जाती है तब कोई किसीको नहीं पूछता है। दूर २ के महमान विचारे प्रायः भूखों मरते हुये जाते हैं।

हमने देखा है कि हमारे खरौवा भाइयोंमें इस चवेनीकी अनोखी ही रीति है। ज्ञात होता है कि

शायद उनमें यह रीति गोलारारे, गोलसिंघारोंको देखा देखी घुस गई है । खरौओंमें जब लड़की वाला सवेरेके वक्त बरी रोटी खिला देता है तब न जाने जबरदस्ती फिर उनको चवेनी कराकर क्यों फिजूल खर्ची की जाती है ॥

हमारे लमेचू भाइयोंमें तो इस चवेनीकी रीति पूरी बे समझीका सबून है । लमेचुओंमें सवेरेके वक्त लड़के वाला डेरों पर गरमा गरम पूड़ी साग खिला देता है फिर भी दो प्रहरके वक्त चवेनी होती है । इसको कुछ तो लोग खाते हैं कुछ लड़के बांध भी लेते हैं बाकी होलीमें रंग, गुलालकी भांति फेंकी जाती है जिसको चवेनीका लुटाना कहते हैं फिर वह भंगियों को डाल दी जाती है । देखिये यह कैसा तमाशा और मालका लुटाना है ॥

हमारी रायमें यह चवेनीकी रीति बिल्कुल बंद हो जाना चाहिये । गोलारारे, गोलसिंघारे तो बिचारे इसके मारे पिसे जाते हैं । न्यायसे और व्यवहारसे भी दोनों वक्त बरातको लड़की वालेको खिलाना ही योग्य है । परन्तु लड़के वालेको अपनी बिरादरीको

थोड़ेसे आदमियोंके सिवाय बरातमें ऐरे गैरे ठलओं को साथ ले जाकर भीड़ भड़क्का नहीं करना चाहिये इसीमें लड़का तथा लड़की वालेकी भलाई है।

विवाह संस्कार की क्रिया तो जो मंडप के नीचे विवाह के समय होती है केवल उतनी ही है। परन्तु वह बढ़ते बढ़ते अब पूरा गोरखधन्धा हो गई है। धनवान् लोग तो उसे ज्यों त्यों कर पूरा करही देते हैं परन्तु बिचारे गरीब आदमियों की पूरी मुश्किल है क्योंकि उसे भी वह सब क्रिया करनी ही पड़ती है। वे विवाह की इन गोरखधन्धे रूप क्रियाओं और खर्च के मारे तंग आरहे हैं। इस लिये जाति के मुखियाओं से प्रार्थना है कि वे शीघ्र ही ऐसा प्रबन्ध करें कि विवाह की योग्य क्रियाओं को रखकर बाकी सब बन्द करदें और उन क्रियाओं का थोड़े खर्च में निर्वाह हो सके जिस से कि अमीर गरीब लोग आनन्दपूर्वक विवाह कर सकें। यह काम धनवान् लोगों के करने का है पहले वे जिस काम में अगाड़ी करेंगे उसीको सब करने लगेंगे इसलिये अपनी जातिके गरीब भाइयों पर दया करके धनवानोंको यह सुधार शीघ्र ही कर देना चाहिये जिससे जाति का कल्याण हो।

पहले समयमें राय भाट लोग बड़े विद्वान् होते थे, बड़ी२ उत्तम नई २ कवितायें करते थे, राजाओंके तथा अन्य लोगोंके बहुतसे कार्य करते थे, सज्जनोंकी कीर्तिका विस्तार करते थे परन्तु आज कलके राय भाट तो कोरे निरक्षर भट्टाचार्य होते हैं जब पढ़े लिखे ही नहीं तब विचारे कविता क्या करें। अब तो वह खेती भी करने लगे हैं तथा यजमानोंमें घूम फिर कर दो एक रट्टू कवित्त पढ़कर भीखसी मांगते फिरते हैं। किसी२ को एक कवित्त भी याद नहीं होता है इस लिये अब इन लोगोंको देना भी एक तरहका व्यर्थ व्यय है। बड़े आदमी चाहे भलेही अपने घरको बिना प्रयोजन लुटादें इसकी चिन्ता नहीं परन्तु देखा देखी विचारे गरीब आदमी भी इनके साथ पिसे जाते हैं। इस लिये वर्तमान समयमें इन मूर्ख राय भाटोंको देना बिलकुल बंद कर देना चाहिये इस व्यर्थ व्यय से कुछ भी लाभ नहीं है।

विवाह में लड़की वाला अपने यहां काम करने वालोंको बरायतकी बिदा होनेके समय लड़के वाले से उन सबोंको मिहनतके अनुसार रुपये दिलाता है जिनकी संख्या कम नहीं होती है कभी २ लड़के वालेके कम रु-

पये देने पर झगड़ा भी हो जाता है इसका नाम गोंला चुकाना है। यह बड़े अन्यायकी बात है। जब लड़की वाला इन सबसे अपना काम कराता है और इन की मजूरी लड़के वालेसे दिलाता है तो यह तो लड़कीके धान्य ग्रहण करनेका बराबर है। इसलिये चाहे लड़की वाला और लेन देनमें कुछ भले ही कमी करदे परन्तु इन सबको लड़की वालेको ही देना उचित है। मालूम होता है यह रीति यों चल पड़ी है कि जब कोई मेहमान अपने घर आता है तो चलते वक्त वह नौकरों को इनाम की भांति कुछ दे जाया करता है। उसी भांति यह विवाहमें भी रीति होगी। इसलिये लड़के वाला यदि अपनी खुशी से सब को इनाम की भांति भी कुछ दे जावे तो कुछ हानि नहीं है परन्तु लड़की वाले को देने की प्रेरणा करना, उनकी मेहनत के माफिक दिलाना, न देवे तो झगड़ा करना आदि बहुत ही अनुचित है।

एक बात तो हम कहना भूल ही गये। वह यह है कि विवाह में लड़के वाला कुछ द्रव्य मन्दिर के लिये भी देता है परन्तु हम देखते हैं कि उस रुपये का सदुपयोग नहीं होता है। कोई २ भले मानुष तो

मन्दिर के रुपयों से अपनी थैली भर लेते हैं। कोई किसी गांव में यदि मन्दिर न भी होवे तो वह किसी दूसरे गांवसे एक प्रतिमा मांग लाते हैं, और कुर्सीलेके ऊपर रखकर लड़के वाले से रुपये वसूल कर लेते हैं पीछे अपना काम चलाते हैं। किसी जगह जो मन्दिर के प्रबन्धकर्त्ता होते हैं वे ही रुपयों को हजम कर जाते हैं। कोई २ हिसाब की गड़बड़झाला में रुपये खाजाते हैं। किसी २ जगह मन्दिर का कुछ हिसाब किताब नहीं है। किसी २ जगह ऐसा देखा गया है कि मन्दिर के रुपये को अपने २ यहां हिस्से पूर्वक रखते हैं और डकार जाते हैं, हिस्सा करते वक्त झगड़ा भी हो जाया करता है कि कोई दूसरा जियादा रुपये न ले जावे। इस भांति अनेक प्रकार से मन्दिर के रुपयों का दुरुपयोग होता है। इस लिये जहां पर मन्दिर में लगाने के लिये रुपयों की जरूरत न हो, या जहां रुपया मन्दिर में ठीक हिसाब से न लगे, या जहां पर मन्दिर का हिसाब किताब ठीक न हो वहां रुपयों का देना भी व्यर्थ व्यय है। हमारे कहने का यह मतलब नहीं है कि मन्दिरोंको रुपये न दिये जावें किन्तु ऐसी जगह दिये जावें जहां उनका सदुपयोग हो। किन्हीं लोगों को यह भी ख्यात हो जाता

है कि यहां पर रुपयों का सदुपयोग नहीं होता है। तो भी वे दे ही देते हैं और यह कहकर टाल देते हैं कि हमारे तो मन्दिर में रुपये देने का पुण्य होवेही-गा, दूसरे के कर्म का फल उसी को होगा परन्तु इस उपेक्षा (बेपर्वाही) का फल बहुत बुरा होता है और रुपये हजम कर जाने वालों के उत्साह को और भी बढ़ा देता है जिससे जाति को बहुत बड़ी हानि हो रही है। इस लिये ऐसे कामों में उपेक्षा करना योग्य नहीं, सर्वत्र विचार पूर्वक कार्य करना ही योग्य है

हम लोगों के यहां जो प्रायः पूजा होती है और जिसके साथ पेट पूजा भी हुआ करती है वह भी एक तरह का व्यर्थ व्यय है। पूजा तो इस प्रयोजन से की जाती है कि साधर्मी लोग इकट्ठे होकर धर्मोपदेश सुनें स्वाध्याय करें, पूजन करें, सामायक करें, भगवान् का भजन करें, शंका समाधान करें, आत्मा का कल्याण करें, जाति की रक्षा और उन्नति के उपाय सोचें। पूजा की चिट्ठियों में भी यही लिखा जाता है कि "पुण्य के भंडार भरेंगे धर्मका महान् उद्योत होगा" परन्तु पूजामें आजकल यथार्थ में ये सब कुछ भी बातें नहीं होती है। दोनों वक्त खूब डाटकर खाते हैं और ठाले बैठे गप्पें हांकते हैं या खूब मौज से सोते हैं।

धर्मकृत्यों की किसी को कुछ भी खबर नहीं रहती है अपने घर पर जो कुछ हम धर्मकृत्य करते भी थे उस में भी कमी हो जाती है। पूजा में हम लोग इसलिये आते हैं कि घर पर तो अष्टप्रहर घरके कामों से फ-रसत नहीं मिलती है इसलिये पूजामें आकर निश्चिन्तता से पुण्यके भंडार करेंगे परन्तु वहां आकर तो हम सब भूल जाते हैं और केवल पेट के भंडार भरने लगते हैं। यह तो हुई पूजा में आने वाले लोगों की बात, अब थोड़ा पूजा करानेवालों के भावों का विचार कीजिये। जब कोई पूजा कराने का विचार करते हैं तब बहुधा लोगों के यही भाव होते हैं कि हमारी पूजा कराने से अच्छी हो, हमारी पूजा ऐसी हो जैसी कि आज तक किसी की भी न हुई हो, ह-मारी पूजा के आगे आज तक हुई सब पूजा फीकी पड़जावें। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि वे अपने वि-चारों के साधन रूप ही कार्य भी करते हैं। लोगोंकी खूब खातिरदारी करते हैं, खाने पीने का खूब प्रबन्ध करते हैं और कहते हैं कि देखो भाई ऐसा करना कि जिसमें कहीं हमारी नाक न कट जावे रुपया चाहे जितने खर्च हो जावें। इसी नाक के वास्ते लोग आ-धीरात से कड़ाहिया चढ़ाते हैं और हजारों जीवों का स्वाहा करते हैं। परन्तु धर्मोपदेशादि का कोई प्रब-

व्यय नहीं करते हैं। पूजा करानेवालों को रात दिन बड़ी आकुलता रहती है बिचारे अच्छी तरह दर्शन, पूजा, स्वाध्याय, भी नहीं कर सकते हैं उनका ध्यान सदैव पूरी कचौरी और खुरमा लड्डुओं की ओर रहता है। पूजा के अन्त में बिचारे बड़ी मुश्किल से जाकर भगवान्‌के सामने एक गोला चढ़ा आते हैं। पूजा पाठ और शास्त्र का तो यह हाल होता है कि पाठ पढ़ानेवाले जल्दी २ पाठ पढ़ाकर पूरा करदेते हैं क्योंकि कहीं पाठ रह न जावे शास्त्रबांचनेवाला यदि कोई हुआ तो जल्दी से कुछ थोड़ा बहुत बांच दिया यदि न हुआ तो खैरसल्ला। ऊपर लिखी हुई बातें कुछ भी बढ़ाकर नहीं लिखी गई हैं किन्तु हम जो पूजामें रात दिन अनुभव करते हैं वही सत्य २ बातें लिखी गई हैं। इस लिये ऐसी पूजा से हम लोगों को कुछ भी यथार्थ लाभ नहीं होता है और यह धर्म की ओट में व्यय होते हुये भी व्यर्थ व्ययके समान ही है।

बुद्धिमान् वही होते हैं जो कि समयानुसार यथार्थ लाभदायक कार्य करते हैं जब कि हमारे लड़के मूर्ख फिर रहे हैं, हमारे सैकड़ों भाई बेरोजगार होरहे हैं, सैकड़ों भूखों मर रहे हैं सैकड़ों अनाथ और विधवायें बड़ी मुशकिल से अपने दिन काटती हैं ऐसे स-

मय में यदि हम बालकों को शिक्षा न दें और अपने भाइयों की मदद न करें और मजेसे पूजा कराकर माल उड़ावें तो कितने शर्म और अन्याय की बात है। इस लिये विचारवालोंको सदैव समयानुसार आवश्यक कार्य करना ही योग्य है।

शिखिरजी गिरनारजी आदि तीर्थ स्थानों पर जाकर ज्योनार करना भी व्यर्थ व्यय है। गृहस्थी की अनेक आकुलताओं को छोड़कर मनःशुद्धिके वास्ते जब हम तीर्थयात्रा करने जाते हैं तब वहां जाकर भी फिर ज्योनार करके अनेक आकुलताओं में पड़जाते हैं यह कितनी बुरी बात है। तिस पर भी महीनों के रखे हुये जिन में कि प्रत्यक्ष सुड़ी, पटा आदि देखे जाते हैं ऐसा आटा, बम्बई आदिकी अपवित्र शक्कर, और कुप्पों आदिका न जाने कैसा खराब घी आदि अभक्ष पदार्थों से हम ज्योनार करते हैं और मान बढ़ाई चाहते हैं फिर भी पुण्य समझते हैं यह कितनी भूल की बात है। इस वर्ष गिरनार जी की यात्रा में तो एक जगह ज्योनारके साधनोंके कारण ही हमारे यहां के भाइयों से लाठी भी चलगई और एक आदमी की खोपड़ी फटगई और वह मरते से बचा और भी कइयों के चोट लगी। बहुत से रुपये भी खर्च हुए।

भाइयो ! जरा बताइये तो यह कौनसा पुण्य हुआ ? इस लिये तीर्थ स्थानों पर जाकर कभी भूल कर भी व्यभिचार नहीं करना चाहिये।

७—विधवा संरक्षण।

भारतवर्ष में आजकल करोड़ों विधवायें रात दिन आंसू बहाया करती हैं। इसी पाप से विद्या, धन, जन, बल और सुख से परिपूर्ण यह भारत देश मिट्टी में मिल गया। उन की दुःखकथा सुनते २ कान बहरे हो रहे हैं कोई ऐसा सदय हृदय पुरुष न होगा जो इन की दुःख कहानी को सुनकर आंखों से दो बूंद आंसू टपकाये बिना रह जाय, इन की पुकार सुनकर छाती फटने लगती है हृदय टूक २ हुआ जाता है तब भी बेचारियों की कोई नहीं सुनता है, कोई इन के दुःख दूर करने का उपाय नहीं करता है।

आज कल बेचारी विधवायें घर में ही डाल कर पीसी जाती हैं कोई घरमें विधवा हुई तो मानों एक नौकरनी नौकर रखली उस से अनाज पिसाया जाता है, रोटी कराई जाती है, बर्तन मंजवाये जाते हैं, घर साफ कराया जाता है, लड़के खिलवाये जाते हैं कहां तक कहें नौकरनी के सभी कार्य उस को करने पड़ते हैं ! फिर भी अच्छा भोजन नहीं मिलता अच्छा

पहनने को नहीं मिलता है । कोई यह ध्यान नहीं करता है कि बेचारी को धर्मशिक्षा दी जावे या बम्बई अथवा इन्दौर के विधवाश्रम में भेजदें जिस से शिक्षा पाकर अपना जीवन निर्वाह करसके और आत्मा का कल्याण करे। यह तो हुई किसी परिवारकी विधवा की अवस्था का वर्णन।

अब यदि आप किसी बेचारी निर्धन एकान्त विधवा की अवस्था सुनें तो व्याकुल हो जावें । जब बेचारी का पति मर जाता है। तब खाने के लिये, पहनने के लिये, लड़कों के खिलाने पिलाने और पढ़ाने के लिये कहां से पैसा लावे. रात दिन किसी की मिहनत मजूरी करके कुछ पैदा भी करती है तो उससे पेट भी कठिनतासे भराजाता है। कोई २ आधे पेट या कोई २ उपवास करके अपने दिन काटती हैं। ऐसी विधवाकी दशा और उनके छोटे २ बच्चोंकी रोतीहुई सूरत एकबारभी यदि आप देखें तो आप अधीर होजावें।

यदि कोई धनी एकान्त विधवा होवे तो उसके पापका वर्णन वचनातीत हो जाता है पतिके कमाये हुए धनको वह पानीकी तरह बहाती है। संडोंको खिलाती है और व्यभिचार कराती है फिर भ्रूणहत्या (बालहत्या) सरीखे घोर पाप करने में भी नहीं हिचकती है।

अब विधवाओंके व्यभिचार और अनुचित सम्बन्धों की कथा सुनिये। जुगमाताका बेटेके साथ, माताका गोद लिये हुए बेटेके साथ, मामीका बहिनके बेटके साथ, बहिनका चाचाके लड़के भाईके साथ भतीजीका चचाके साथ, देवरका भौजाईके साथ, जेठ का बहूके साथ, श्वसुरका बहूके साथ, सासुका दमादके साथ, आदि अनेक प्रकारके विधवाओंके व्यभिचारके सम्बंध हमारे प्रत्यक्ष हैं जिनको देख सुनकर घृणासे चित्त व्याकुल होजाता है।

कोई २ उच्च कुलकी विधवायें कोरी, चमार, नाई तेली, तमोली, और मुसलमानोंके साथ भागजाती हैं। कोई २ बाजारमें बैठकर वेश्यावृत्ति करने लगती हैं जिनको देख सुनकर शिर नीचेसे ऊपरको नहीं उठताहै।

कोई २ कुलीन विधवायें शिखरजी गिरनारजी आदिकी तीर्थ यात्राके बहाने जाकर तीर्थ स्थानोंपर ही भ्रूणहत्या सरीखे घोरपाप करती हैं। कोई २ विचारी विधवाओंको गर्भ रहजाने पर और सम्बन्ध प्रगट होजाने पर घरसे निकाल दी जाती हैं फिर वे भीख मांग २कर अपना गुजारा करती हैं। कोई विधवा यदि सुशील भी होती हैं तो उसके घरके, उसके नातेके, उसके पड़ोसके लोग जबरदस्ती व्यभिचारिणी

कर देते हैं फिर गर्भ रहजाने पर पीछे अपने मान रक्षार्थ विचारीको भ्रूणहत्याके लिये लाचार करते हैं। आजतक यदि सब भ्रूणहत्याओंका हिसाब जोड़ा जाता तो खूनकी नदियां बहने लगतीं।

इत्यादि विधवाओंकी इतनी बड़ी रामकहानी है कि यदि सब लिखी जावे तो एक पूरा पुराण बन-जावे। इतने पर भी करोड़ों विधवाओंके बिलखाते हुये भी हमारे भाई बाल विवाह, वृद्ध विवाह, कन्या विक्रय आदिसे विधवाओंके झुण्डको रात दिन बढ़ारहे हैं।

भाइयो! सचेत होजाओ और अब विधवाओंको न बढ़ाओ। तथा जो हैं उनकी रक्षा करो। उन्हें दुःखी मत होने दो। सबके अन्तरमें एकसा जीव है। गृहस्थीमें स्त्रियोंके सुखी रहने से ही आप भी सुखी रहेंगे।

इन सब कुरीतिओं को जब आप अपनी जातिसे निकाल देंगे तब ही आप संसार में सुखी होंगे और आत्माका कल्याणकर मुक्तिको पावेंगे।

३—पारस्परिक विवाह।

संसारमें यह एक मोटीसी समझ मशहूर है कि (जिसकी रोटी उसकी बेटी) और यह बात है भी ठीक। तो जब गोलालारे, गोलसिंघारे, खरौवा, लमेचू, बुढ़ले यह गोटें प्रत्येक कार्यमें सहमत हैं और

हमारे सब काम पांचगोटोंसे मिलकर होते हैं। हमारे सबके देव, गुरु, शास्त्र, धर्म और आम्नाय एक हैं। कच्ची रोटी भी सबकी एक है फिर क्या कारण है कि हम सब आपसमें बेटी व्यवहार क्यों न करें? अवश्य करना चाहिये इसके करनेमें कोई हानि नहीं है और शास्त्रोंमें भी ऐसे करनेकी आज्ञा है।

जब प्रत्येक गोटकी संख्या बहुत अधिक थी तब तो अपनी २ गोटों में ही विवाह कार्य अच्छी तरह चल आता था परन्तु अब प्रत्येक गोट की संख्या बराबर हीन होती चली जाती है जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि प्रत्येक गोट में जो कई २ गोत्र होते हैं वे सब गोटोंमें एक न एक गोत्र नाशको अवश्य प्राप्त हो गये हैं या जो कोई गोत्र थोड़े बहुत बचे भी हैं वे प्रायः नाश होनेको हैं। एक गोलारारोंमें ही को २२॥ गोत्र थे वे अब घटते २ करीब १७ या १८ के रह गये हैं बाकी सब मर मिट गये। इसका कारण एक विवाह क्षेत्रकी संकीर्णता है इस लिये यदि आप सब लोग अपनी २ गोटों को बचाना चाहते हैं तो शीघ्र ही पांचो गोटोंमें आपसमें बेटी व्यवहार जारी करदीजिये इससे बहुत लाभ होगा यहांपर लेख बढ़जाने के भयसे हानि लाभको विशेष रूपसे नहीं लिख सकते हैं।

कहनेका मतलब यह है कि पांच गोटोंमें आपसमें विवाह सम्बन्ध होना योग्य है और उसके बिना बहुत हानि होरही है इसलिये बुद्धिमानोंको तथा जाति हितैषियों को पारस्परिक विवाह शीघ्र जारी करदेना चाहिये।

४-शुद्धाचरण ।

प्रत्येक जैन कहलाने वालों को योग्य है कि वह अष्टमूल गुणोंका धारण करें इसके विना कोई भी जैन कहलानेके योग्य नहीं है। कुल परम्परा से या नाम मात्र से कोई जैन नहीं हो सकता है॥

अष्टमूल गुणोंका स्वरूप इस प्रकार है:—

१—मद्य (शराब) २—मांस (गोश्त) ३—मधु सहत इनको नहीं खाना। और ४—हिंसा नहीं करना ५ झूंट नहीं बोलना ६—चोरी नहीं करना ७—पर स्त्री सेवन नहीं करना ८—परिग्रह (मूर्छा=लालच) नहीं करना।

इन तीन मकार और पंच पापोंका गृहस्थावस्था में अंश, (स्थूल) रूपसे त्याग करनेकी योग्यता है सर्वथा रूपसे त्याग मुनि अवस्थामें होता है। कोई २ लोग इनके त्याग करनेकी बात आनेपर ऐसा गोलमगोल करते हैं और बालकी खाल निकालते हैं कि जो स्थूल रूपसे त्याग होता भी हो उसे भी नहीं होने देते हैं फिर न इधरके रहते हैं और न उधरके रहते

हैं। इस लिये गृहस्थको इनका त्याग स्थूल रूपसे करके शुद्धाचारका रूप प्रचलना योग्य है।

अब इनका संक्षेपसे पृथक् २ त्याग करनेका विधान लिखते हैं:—

१—मद्य। संसारमें नशा करने वाली जो शराबके नाम से प्रसिद्ध है उसका, तथा और जो भांग, अफीम, गांजा, चर्श, चंडू आदि नशीली चीजें हैं उनका त्याग करना॥

२—मांस। मांसकी डलीका त्याग करना।

३—मधु। जो सहतकी मक्खियों के छत्तेसे उनकी हिंसा करके प्राप्त होता है उस सहतका त्याग करना।

४-हिंसा। हिंसा चार प्रकारकी होती है। १—संकल्पी (संकल्प यानी इरादा करके किसीको मारना) २—उद्यमी (उद्यम यानी रोजगारमें होती हुई हिंसा) ३—विरोधी (अपनी और अपनी प्रजाकी रक्षाके लिये विरोधमें होती हुई हिंसा) ४—आरम्भी (आरम्भ यानी घरके कार्योंमें होती हुई हिंसा) इन में केवल संकल्पी हिंसाका त्याग करना।

५-झूठ। जिस झूठके बोलनेसे राजा दंड दे और प्रजा निन्दा करे ऐसे झूठका सर्वथा त्याग तो करना ही और हमेशा सत्य वचन बोलना, झूठ कभी नहीं बोलना॥

६—चोरी। बिना दी हुई दूसरेकी कोई चीज नहीं लेना।

७—परस्त्री । अपनी विवाहिता स्त्री को छोड़कर अन्य सर्व स्त्रियोंसे संसर्ग नहीं करना ।

८—परिग्रह । ऐसा लालच और असंतोष नहीं करना जिससे अन्याय और अधर्म रूप आचरण हो जावे ।

द्यूत । जुआ का भी त्याग करना चाहिये क्योंकि जुआरी मनुष्य हिंसा झूंठ चोरी परस्त्री परिग्रह आदि किसी भी पापका त्याग नहीं कर सकता है । इस लिये जुआका त्याग अवश्य करना ।

इनका यदि और विशेष खुलासा देखना हो तो जैन शास्त्रोंमें देख लेना चाहिये ॥

इन बातोंके त्याग विना और अष्टमूल गुणोंके धारण किये विना जो अपनेको जैन प्रसिद्ध करते हैं वे समाजमें कलंक स्वरूप हैं और जैन धर्ममें धब्बा लगाने वाले हैं । इससे यदि आप जैन हैं या जैन बनना चाहते हैं तो सबसे पहले इन का त्याग करना बहुत जरूरी है । इन बातोंका त्याग करने वाला पुरुष वृटिश गवर्नमेंटकी ताजीरात हिन्दकी किसी भी दफामें सजावार नहीं हो सकता है और सभ्यतामें भी पीछे नहीं रह सकता है क्योंकि असली सभ्यता यही है ॥

इनके त्याग किये विना आपका हरी आदिका त्याग करना, बहुतसा सोध रूप पाखंड करना आदि क्रियायें केवलमात्र दिखावा हैं वे कुछ कार्यकारी नहीं हैं ॥

अन्तिम प्रार्थना ।



अन्त में पुनः निवेदन है कि यदि आप अपनी उन्नति चाहते हैं तो ऊपर लिखी बातों पर जरूर अमल कीजिये । बालक बालिकाओं को विद्या पढ़ाइये सुशिक्षा दीजिये । बालविवाह, वृद्धविवाह, अनमेल-विवाह, कन्याविक्रय, वेश्यानृत्य, और व्यर्थ व्यय आदि कुरीतियों को दूर कीजिये । विधवा और अनाथों की रक्षा कीजिये । पारस्परिक विवाह प्रारम्भ कीजिये । तीन मकार, पञ्चपाप और जुए को छोड़कर शुद्धाचरण धारण कीजिये । यही आपको सुखका कारण और " हित की बात " है ।

आपका हितैषी,

चन्द्रसेन जैनवैद्य, गोलारारे

इटावा निवासी ।

जैनतत्त्व प्रकाशक

(मासिकपत्र)

इस नाम का जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभाकी ओर से हर महीने एक पत्र निकलता है। उसमें धर्म सम्बन्धी और जाति सम्बन्धी अच्छे २ लेख छपते हैं और ग्राहकों को साल में उसी के साथ बिना मूल्य कई पुस्तकें भी मिलती हैं। कीमत सिर्फ साल में १) लगती है। आप भी १) रु० भेजकर ग्राहक हो जाइये और चिट्ठी में अपना नाम, ग्राम, डाकखाना और जिला साफ २ लिखकर भेज दीजिये। हर महीने घर बैठे आपके पास पहुंच जाया करेगा। इसके पढ़ने से आपको बहुत फायदा होगा।

मंगानेका पता:—

चन्द्रसेन जैन वैद्य, सम्पादक

"जैनतत्त्वप्रकाशक,, चन्द्राश्रम इटावा।

पशुवध बन्द

ABOLITION OF ANIMAL SACRIFICES OF

KALIKA DEVI JI, DELHI.

अर्थात्

इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) में कालिकादेवी

के मन्दिर पर से पशुवध का

बहिष्कार

श्रीमान् बाबू हीरालाल जोगीराज के द्रव्य से

जगन्नाथ मन्त्री जीवरक्षिणी सभा

देहली ने प्रकाशित किया।

पं० अनन्तराम के प्रबन्ध से

अनन्तराम और साठे के-सद्धर्मप्रचारक यन्त्रालय देहली में छपा.

१०००] सं० १९७४ वि० सन् १९१७ ई० [बिना मूल्य

भूमिका ।

जीव दया के प्रेमियों से
दो बातें ।

सब शास्त्रों, सब धर्मों और सब महापुरुषों ने जीवदया को उतनी ही प्रधानता दी है जितनी मनुष्य जीवन के लिए उन्होंने हवा को ज़रूरी बताया है । बिना हवा के जैसे मनुष्य एक क्षण भर नहीं जी सकता-वैसे ही जीव दया के बिना वह धर्म के मन्दिर की ओर आंख नहीं उठा सकता । मुहम्मद, क्राइस्ट, ल्यूथर, से लगा कर राम, कृष्ण, तथा महावीर, ऋषभ आदि सब ने दया धर्म को प्रधानता दी है । संसार भर के मतों की संख्या कई हज़ार है—पर नाम लेने के लिए भी ऐसा एक मत नहीं है जिस में जीव दया की प्रधानता साफ़ और गौरव वाले शब्दों में स्वीकार न की गई हो । कहने के लिए 'वाममार्गी' नास्तिक हैं—पर उनसे भी जीवदया स्वीकार किये बिना न रहा गया । इस प्रकार यदि सरसरी दृष्टि से देखेंगे तो संसार में दया ही प्रधान है । एक राजा या बादशाह जब

दूसरे राजाको जीतता है तब वह घोषणा करता है कि "मैं यहां के निर्बलों की रक्षा सबलों से करूंगा—मैं यहां के दीन हीनों को बचाऊंगा और परमात्मा के पवित्र उद्देश्य का संचालक बनूंगा। इस अतिशय प्राचीना माता वसुन्धरा पर ऐसा एक भी धराधीश नहीं हुआ जिसने अपनी घोषणा में अत्याचार की सूचना दी हो। इस से स्पष्ट है कि विश्व में अहिंसाधर्म राज्य करता है—हिंसा नहीं। समय २ पर मनुष्य अत्याचारी बन जाता है--पर वह सदा सर्वदा के लिए अत्याचारी नहीं बन सकता। मनुष्य प्रकृति हिंसक नहीं, वह हिंसा द्वेष से दूर शान्त और अहिंसक है। मानवी जीवन की बाढ़ अहिंसा में होती है और हिंसा में घटत।

परिवार के कामों में लगा हुआ मनुष्य अपने परिवार में अहिंसावृत्ति से शान्ति लाता है और देशरूपी परिवार का काम करने वाले महापुरुष देश भर में अहिंसा करो, माता कालिका जीवमात्र की माता है—वह अपने पुत्रों की बलि लेकर, उनका खून पीकर कभी प्रसन्न नहीं हो सकती।"

यह अहिंसा के उपासकों का अद्भुत त्याग था। आर्य समाजी, सनातन धर्मी, जैनी नौजवान "जीव रक्षा" का पट्टा

अपने गले में डाले दीन शब्दों में प्रार्थना करते फिरते थे। पर दो एक वर्ष तक सफलता न हुई। अन्त में उद्योग सफल हुआ। अहिंसा धर्म की जीत हुई। अविद्या पर विद्या ने विजय पाई। दानवी ने देवी के आगे हार मानी। जहां सैकड़ों बकरों का बध आये छै महीने होता था वहां उन निरीह प्राणियों की रक्षा हुई। सबका उद्योग सफल हुआ। दया धर्म के प्रेमियों में आनन्द छा गया। कोशिश करने वाले मुसकुरा उठे।

इस पवित्र कार्य में सर्कारी अफ़सरों ने भी तन, मन से सहायता दी थी। देवी कालिका के पुजारी जोगियों और ब्राह्मणों ने जी तोड़कर कोशिश की। चमारों की पंचायतों ने अपने हस्ताक्षर करके बकरे चढ़ाने वालों पर दंड नियत किया। हमारी दिल्ली सरकार ने अपनी निरपेक्ष नीति का पत्र देकर इस कार्य में सहायता दी। सब के सम्मिलित उद्योग से बिचारे जीवों का बध बंद होगया। मेले में मांस की दूकानों का लगना हट गया।

इस में कौन किसको धन्यवाद दे ! सब अहिंसा प्रेमी

सब अहिंसा प्रेमियों के गले मिल कर और अधिक पवित्र काम में भाग लेवें यही प्रार्थना है।

इस पुस्तक के अगले पृष्ठों में जो कुछ पाठकों को मिलेगा वह सब इसी अहिंसा के रोकने की भिन्न २ मतों के शास्त्रों प्रमाण और कार्रवाई है। भगवान सब को सुमति देवें-और अहिंसाधर्म की ओर सब की मति करें यही अन्तिम विनय है। सो शान्ति लाता है। जिनका विस्तृत प्रेम सम्पूर्ण मानव जाति से है, वे संसार भर के मनुष्यों में अपनी हार्दिक अहिंसा से सुख संचार कर देते हैं। किन्तु मुक्त-अनन्त-अगाध-आकाश के समान जिनका प्रेम प्राणिमात्र पर है वे गौतमबुद्ध, श्रीराम, श्रीकृष्ण, महाबीर, शंकराचार्य की तरह प्राणिमात्र का हित करते हैं। सर्प, शार्दूल और गौ उनके निकट समान हैं—सभी उनके प्रेम के भिखारी हैं। इसीलिये वे जगद्‌बंधु हैं। इसी कारण उनके नाम से निर्जीव पाषाण भी पूजे जाते हैं। वे अहिंसा के समुद्र थे।

आज यदि हमारे लिये कोई बचा खुचा अभिमान है तो वह यही है कि हम अपने आप को उन पूज्य पुरुषों की संतान

समझते हैं । हमारी नाड़ियों में उन्हीं अहिंसा के सिद्ध योगियों का रक्त बहता है—हम उन्हीं के दिखाये चरण-चिन्हों पर चलते हैं । हमारा सर्वस्व खोगया पर अपने उन परम—पूज्य पूर्वजों का दयाधर्म अब भी हमारे पास है—और यह अतुल सम्पत्ति है । वही दया हमारे हृदयों को प्रेरित करके हम से जीव रक्षा करवाती है ।

स्थानीय जीव रक्षिणी सभा के मन्त्री जगन्नाथ जैनी जौहरी व सदस्यों का हृदय देवी कालिका के मंदिर पर जीव बलि देखकर कांप उठा । जो सदैव से अहिंसा धर्म के उपासक रहे हैं—वे अज्ञान द्वारा हिंसा कैसे देख सकते थे ? जितनी शक्ति थी उतनी ही पर भरोसा करके जीव रक्षा का अहिंसक झंडा लिये जीव रक्षा के प्रेमी माता कालिका की वेदी पर जा डटे एक वर्ष तक इस पवित्र काम में कुछ भी सफलता न हुई । जीव रक्षा के प्रेमी उन बकरे काटने वालों से हाथ जोड़कर कहते थे कि—" भाइयो, यदि प्राणियों के वध से तुम्हें देवी की प्रसन्नता प्राप्त होती हो तो इन निरपराधों को छोड़ कर हमारे गलों पर अपना छुरा चला लो—पर खून की धार देख कर थर २ कांपते हुये इन बकरों पर दया करो— दया ।

अथर्ववेद ऋचा पहली ॥

ये भिषस्राः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ।
वाचस्पतिर्बला तेषां, तन्वो अद्य दधातु मे ॥ १ ॥

जल, स्थल तथा आकाश में घूमने वाले और अनेक रूपों के धारण करने वाले जो जन्तु समूह इधर उधर और सब ओर भ्रमण करते रहते हैं उनके शरीर को बलवान् पुरुष न सताये किन्तु मुझे संतुष्ट करने के लिये उन्हें पोषित करे यह परमात्मा की ओर से सब जीवों के प्रति उपदेश दें कि हे जीवो ! दया से सर्व सुख सम्पत्ति प्राप्त होती है मेरी प्रीति के और अपने सुख के लिये किसी भी प्राणी को सताने की चेष्टा न करो इत्यादि ॥ १ ॥

वेद धर्मोपदेश ॥

मा हिंस्यात्सर्वा भूतानि ॥ २ ॥

किसी प्राणी का भी वध न करो ॥ २ ॥

यजुर्वेद, १८--३ ॥

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणिभूतानि समीक्षे ॥ ३ ॥

मैं मित्र की दृष्टि से सब प्राणियों को देखूं ॥ ३ ॥

महाभारत शांतिपर्व उत्तरार्ध मोक्ष धर्म; अध्याय, ६२ ॥

सुरा मत्स्याःपशोर्मांसंद्विजादीनां बलिस्तथा ।
धूर्तं प्रवर्त्तितं ह्येयं तत्र वेदेषु कथ्यते ॥ ४ ॥

मद्य,मांस, तथा ब्राह्मणादि का बलिदान सब कुछ धूर्तों ने चलाया है इसका वेदों में निषेध है ।

महाभारत, शांतिपर्व ॥

कण्टकेनापि विद्धस्य महती वेदना भवेत् ॥
चक्र कुंतासियष्टयाद्यैः, मार्यमाणस्य किं पुनः ॥५॥

कांटा चुभने से भी जब अत्यन्त कष्ट होता हैं तब चर्खी भाले तलवार और दण्डों से मारे जाने वाले पशु के कष्ट का क्या वर्णन हो सकता है !

परमात्म प्रकाश, श्लोक २५४

जीव वहतदण रयगइ अभय पदाणें सग्गु ।
वे पहज वलादरीसिया जहिं भावइ तहिं लग्गु ॥ ६ ॥

जीव के मारने से नरक और अभय दान से स्वर्ग होता है ॥ ६ ॥

सागर धर्मामृत प्रथमाध्याय ॥

प्राणा यथात्मनोऽभीष्टा भूतानामपि ते तथा ।
आत्मौपम्येन भूतानां दयां कुर्वन्ति मानवः ॥ ७ ॥

जिस प्रकार तुम्हें अपनी जान प्यारी है उसी तरह सब जीवों को अपनी २ जान प्यारी है इसलिये मनुष्यों को अपनी आत्मा की तरह सब जीवों पर रक्षा करनी चाहिये ॥७॥

महाभारत ॥

चराणामचराणां च योऽभयं वै प्रयच्छति ।
स सर्व भय निर्मुक्तः परं ब्रह्माधि गच्छति ॥ ८ ॥

जो चर अचर सबको अभय दान करता है वह सब प्रकार के भयों से छूटकर परब्रह्म को प्राप्त करता है ॥ ८ ॥

२

तिल सर्षपमात्राणि यो मांसं भक्षते नरः ।
स याति नरके घोरे यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ९ ॥

तिल और सरसों के कण के बराबर भी जो पुरुष मांस खा लेता है वह जब तक चन्द्र सूर्य वर्तमान हैं रौरव (घोर) नरक में पड़ा रहता है ॥९॥

ज्ञानार्णव ॥

प्रमाणी कृत्य शास्त्राणि यैर्वधः क्रियतेऽधमैः ।
सह्यते परलोके तैः श्वभ्रे शूलादि रोहणम् ॥ १० ॥

शास्त्रों का प्रमाण दे दे कर जो दुरात्मा पशु बध करते हैं अवश्य परलोक में उन्हें शूली पर चढ़ना पड़ता होगा ॥१०॥

स्वान्ययो रथ नालोक्य सुखं दुःखं हिता हितं ।

जन्तून् यः पातकी हन्यात्स नरत्वे पि राक्षसः ॥११॥

जो मनुष्य अपना और दूसरेका सुख दुःख न विचारे और जीवहत्या करे वह मनुष्य रूप में राक्षस है ॥११॥

मनुस्मृति

यो बंधन बध क्लेशान् प्राणिनां न चिकीर्षति ।

स सर्वस्य हितप्रेप्सु सुखमत्यत मश्नुते ॥ १२ ॥

जो गवादि प्राणियों को बंधन बध और दुख दान नहीं देता सब के हितकी कामना रखने वाला वह मनुष्य अत्यंत सुख की प्राप्ति करता है ॥ १२ ॥

भागवत स्कन्ध ३ अध्याय ७

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ ।

जीवाभय प्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि ॥ १३ ॥

सब वेद यज्ञ तप और दानो को लाओ तब भी हे अकलंक वे सब मिलकर अहिंसा की १ कला के भी बराबर नहीं होते ॥ १३ ॥

महाभारत अनुशासन पर्व १३ अध्याय

अहिंसा परमोधर्मस्तथाऽहिंसा परो दमः ।
अहिंसा परमंदानं अहिंसा परमंतपः ॥ १४ ॥

अहिंसा ही परम धर्म है वही सब से बढ़कर मनोदमन है, अहिंसा ही भलादान और अहिंसा ही उत्कृष्ट तप है ॥ १४॥

(Translation of Resolution in Urdu by Pujari's.)

TRIUMPH TO SRI KALKA BHAWANI.

The worshipper at the temple of Goddess Sri Kalkaji situate at Mauza Bahapur Delhi, do, during the six monthly fair at Chait and Asouj offer living goats and sacrifice them before the deity. The blood of these poor creatures is shed at the sacred place of worship, in contravention of all the injunctions of Hindu Shastaras all of us i. e. Pujaris of the said deity and other inhabitants of Mauza Bahapur and also others have, therefore, unanimously resolved that in future only living goats be offered to the Goddess and their sacrifice before her stopped for ever. We therefore request all these worshippers who may happen to visit the shrine to desist from sacrificing goats within the temple as well as its outskirts.

(Signed in Urdu and Hindi)

Gopi Nath, Niader Mal, Ramji Lal, Fakeer Chand, Bhola Nath Jogi, *Namberdar*, Kishan Sahai Jogi, Jiwan Lal, Bihari Lal, Chhajjoo

Chaudhri, Hira Lal, Bona Nath Jogi, Mahtab Singh, Mohar Nath Jogi, Kuria. Ram Dial, Ram Singh, Sultan, Har Dyal, Kanhya Lal, Nandeo, Nanak and other signs of thumbs.

(Translation of Resolution in Urdu by Chamars.)

TRIUMPH TO KALKAMAI BEARING 84 BELLS BEFORE HER.

Brother "Triumph to the mother of the universe and during this year our patrons and Raises of this city worthy Pandas of Goddess Kalkaji have already made it known to all by publishing notices that according to Hindu Shastaras, Vedas, Purans, and Simartees, etc., it is a great sin to sacrifice goats at the sacred *Asthan* of Kalkamai *Mercy alone is the most of Dharam.* All the members of Hindu castes whether high or low have from out stations written under their signatures to Jiv Rakshni Sabha, Delhi, that they do not wish such offering of goats as to involve their killing, all of us belonging to Delhi and its suburbs have therefore, after holding our Pancha-

yats at the Basti of Kanhya Chaudhri on the 12th of September 1915 unanimously resolved that no member of our brotherhood is to sacrifice any goats in future at Kalkâji temple or within its limits, and that whoever disobeys this resolution of the Panchayats, shall be responsible for it to the said body.

It is therefore published through this notice as under that all our brethren may comply with this resolution.

(Signed in Urdu)

Ramdial Chief Choudhri, Basanta Chaudhri, Dilsukh Choudhri, Pokhara Chowkrat, Ganga Das Wazir, Majjan Chaudhri, Moti Chaudhri Pooran Chaudhri, Cheta Chaudhri, Moola Chaudhri, Bhola Chaudhri, Harjas Chaudhri, Lâlman Chaudhri, Buddha Chaudhri, Punna Lal Chaudhri, Nand Ram Chaudhri.

———

(Dist. Board Office File No. 857 F. Re. Slaughtering goats on Kalka Fair.)

ORIGINAL ON EIGHT ANNAS COURT FEE STAMP.

THE DEPUTY COMMISSIONER,
DELHI.

The humble petitioners, the pujaries of the temple of Sri Kalka Devi beg to lay the following before your honour:—

1. That there are two gatherings one in Chet or April and the other in Asauj or October of every year, attached to the temple of Sri Kalka Devi situated in Mauza Bahapur Tahsil and province Delhi.

2. That among other festivities observed, on the occasion the disgusted practice of killing the goats and cutting the ears of living ones also prevails.

3. That the practice above referred to besides being in itself cruel and unconsciable is opposed to the Hindu sentiment and is no

where allowed by the sacred Hindu books and moreover is against the law established by the Government under Act of cruelty to animals Act (Act XI of 1890).

4. That it increases the danger of diseases breaking out among the mela people on account of so much flesh being consumed mostly half cooked etc and this fact can be ascertained by the Medical officers concerned.

5. That it is the result of the basest kind of superstition such as the idea that by offering a he-goat to the Kalka Mai one gets a son or gets himself married etc. instead and is put upon the illiterate class of people by the butchers and those who want to buy the skins which is amply proved by the facts firstly that these offerings are not allowed inside the temple and are not taken by any one as a *pershad* and secondly that this practice obtains only in very low castes

such as chamars and kolees, etc. and is confined to them.

That the practice is wholly against the tenets of the Hindu religion and is of no use except of giving a bad name to Kalka Mai and throwing bad impression upon the Hindu religion.

That we the Pujaries, other learned and respected Hindus of Delhi have passed resolutions and have been trying to stop the bad practice by lecturing people but on account of the following reasons have but only partially succeeded in their efforts.

(1) That the butchers are allowed hawking in the Mela who by their solicitations are enabled to tempt many ignorant in the crime.

(2) That the same case is with those who come to purchase the skins and who give out that it was by the order of the Government and that the skin fetches as much as the living goats

meaning thereby that people can oblige the deity without any costs to themselves though it is wholly for the taste of the tongue and has no concern whatever with the Goddess.

(III) *That persons who cut the ears of* the poor animals are also allowed hawking to the effect that the operation is done by them very cheap.

(IV) And lastly but not least the Government gives the contract of *Butcher Khana* and has built a house for that purpose, the ignorant thereby thinking that the practice is approved and encouraged by the Government.

8. That the petitioners are supported by the whole aristocracy of the Delhi Province. The Chamars of Delhi have also in their Panchayat passed a resolution condemning the practice, and signatures of Chaudhries are obtained which can be inspected by the

authorities, mostly the menials are in practice of performing this irreligious system.

That outside public also has condemned the practice which is evidenced by large number of signatures which we have obtained in connection therewith and which can be inspected by the authorities.

Therefore under the above circumstances we the humble petitioners pray that the following be circulated as orders of the Government.

(I) That the butchers are not allowed within and near the precints of the temple and are prohibited from hawking by way of tempting the worshippers (Jatries) in the act of having the goats killed.

(II) That persons cutting the ears of living goats will be prosecuted under cruelty to Animals Act.

(III) That the contract (theka) of the

butcher house on the occasions is discontinued hereby.

(Sd.) Bishan Sarup,

Delhi. Pleader.

Signed in Urdu and Hindi and thumb marked by the following; Bihari; Hira Lal, Fatteh Chand; Khushhali Ram, Brahman Bhagwan Sahai Ramji Lal, Kanhya Lal, Gordhan, Jiwan, Hardyal, Nanak, Kishan Sahai, Mahr Nath, Ram Chand alias Banka, Sultan, Chhajju, Misri Lal, Chaudhri Niadar Mal. Panda, Jamadar Ramji Lal Panda, Jagan Nath Jain.

ORIGINAL ON EIGHT ANNAS COURT FEE STAMP.

To

The Deputy Commissioner,
Delhi Province,
DELHI.

Respected Sir,

With reference to an application of the Pandas of Kalkaji temple for stopping the slaughter of

animals at the said temple, we the undersigned also agree with their application.

(Signed in English, Nagri and Hindi.)

Gauri Lal Shastri, Sheo Pershad, Bala Pershad Magistrate 1st Class Delhi, Kanhya Lal, R. B., Retd. Executive Engineer, G. Shanker, R. B, Retd. Ex. Er., Minamal Dhuliawala, Ramchand Honorary Magistrate, Ramji Das retired Tahsildar, Harnarain Das retired Tahsildar, Eshri Pershad, Mithanlal and some others not decipherable.

SUGGESTIONS BY DISTRICT BOARD.

Previous papers on the subject are herewith submitted. Last year when the slaughter house was constructed at Bahapur near the Kalka temple an application on the similar subject was presented, and filed by the Deputy Commissioner on the 14th October 1915 after being enquired through the Tahsildar. In this connection kindly see my vernacular note dated 13th October 1915, flag A.

The matter is a religious one and there seems no reason to interfere in it. The pilgrims are at

liberty to have the goats sacrificed or cut their ears according to their ancient custom.

The suggestion of the Naib Tahsildar of Mehrouli made in his report (Flag B) on the Kalka fair held in April 1916 is also submitted for perusal.

(S D.) NABI AHMAD,
Secretary, District Board, Delhi.

Copy of order passed by V. Connolly, Esquire, I.C.S., Deputy Commissioner, Delhi regarding the goat slaughter at the temple of KALKA DEVI.

It is always the policy of Goverment to abstain from interfering in religious matters. Slaughtering of goats is an old established practice at the Kalka Mela and any action to abolish it should come from the leaders of the Hindu Community and the Pujaris themselves. If they consider the practice to be contrary to Hindu tenets, they should use their influence with those who follow

the practice in order to discourage and stop it. No doubt they are using their influence, but that influence may not have full effect at once.

Goats Slaughter will probably continue to some extent and for some time. The Slaughter house is not there to encourage goat slaughter. It is there to secure that goats are slaughtered, they should be slaughtered in a sanitary way. And as goats will, as I have said, probably be slaughtered this year, the slaughter house should remain open.

As regards the cutting of goats ears, I hav e been told that the practice does not prevail to any great extent. The Pujaris should themselves persuade the pilgrims not to indulge in this practice at all. They can themselves on this own authority issue a proclamation at the fair that the practice should not be indulged in this.

V. CONNOLLY,
Deputy Commissioner.



॥ जय श्री कालिका माई ॥

इश्तिहार आम

मन्दिर कालिका पर बकरे का वध बन्द

यह पहिले विज्ञापनों के समान कालका देवी के यात्रियों को सूचित किया जाता है कि बकरों के वध करने और उनके कान काटने की बुरी प्रथा को छोड़दें, और इस कार्य के करने की कदापि चेष्टा इस छमाही के मेलों पर मन्दिर के स्थान और उसके हेदूद में न करें, और जो कोई ऐसा करेगा तो उसको मन्दिर पर चढ़ना न होगा। क्योंकि यह बकरे के वध करने को और उस के कान काटने की बुरी प्रथा हिन्दू शास्त्रों से बिलकुल विरुद्ध है। इस में सबही हिन्दू रईस पण्डित शहर देहली वगैरः के सम्मिलित हैं कि बकरे वध न हों और न उसके कान काटे जावें।

और सरकार गवर्नमेंट आलिया की तरफ से भी बमूजिब हुक्म ता० २२ सितम्बर सन् १९१६ ई० में—पुजारियों को यह हिदायत हुई है कि फौरन इस बुरे अमल को बिलकुल बन्द करें और इश्तिहारात अपनी अख्तियारात से देदें, और यात्रियों को समझा दें, कि बकरे न काटें और न उनके कान काटें इस लिये उम्मेद है कि हर यात्री इस बात की पैरवी करने में तत्पर होगा। कि बकरे वध न किये जावें और न

उनके कान काटे जावें, यहां तक भी, कि देहली के चमारों ने भी अपनी पंचायत कर विज्ञापन दे दिया है कि कोई भाई (चमार) मन्दिर कालका पर बकरे न काटें।

नोट १—जनाब डिप्टी कमिश्नर बहादुर के हुक्म की नक़ल ता० २२ सितम्बर सन् १६१६ ई० की जिस साहब को मुलाहज़ा करना हो मन्दिर कालकाजी में लटकी है, मुलाहज़ा करें।

नोट २—मुसलमान साहब पेशा क़साई और बकरे फरोश और कबाबी दुकानदार मिहरबानीकर इस कालिका जी के मन्दिर पर और उसकी हद हदुद मेले के वक्त आने की तकलीफ हरगिज़ २ न करें।

नोट ३—इस छमाई और चैत की छमाई पर सिर्फ जोगियों की बारी है इस लिये इस अमल की निगरानी संजानाथ वगैरः के जिम्मे है, और आगे ब्राह्मणों की बारी में एक ब्राह्मण पुजारी और एक जोगी पुजारीके जिम्मे रहेगी।

द० बाबा संजानाथ वगैरः चौधरी रामजीलाल

चौधरी न्यादरमलपंडा

कालिका जी महारानी के मौजे बहापुर सूबा, देहली

Report submitted by Doctor In-charge of the fair of Kalka.

All the goats were ordered to be kept in a pound and not allowed to roam about.

A wholesome featude of the fair was that the slaughter house was not required to be used at all. Formerly more than a thousand goats used to be slaughtered on the occasion so that considerable efforts had to be made to keep the slaughter house and the surrounding area in a clear condition and even then the result could not be said to have been all that was desirable. On account of the large number of the goats slaughtered in so short a time and in such a house. The burial of the offal used to form another difficult question. The numerous vultures that used to hover about the place to feast on the refuse were this time conspicuous by their absence.

None of the cases of digestive troubles brought on by eating half cooked meat who used to seek medical aid on the last days of the fair were seen on this fair.

There was no case of infections nature.

(Sd.) *Doctor* DHANPATRAI Verma,
Plague Medical Officer,
District Delhi.

15-10-16.

नकल पण्डों की पंचायत की तजवीज़ की ॥

श्री दुर्गा भवानी की जय ।

जो कि मन्दिर श्री कालका देवी जी वाके मौजा बहापुर देहली प्राविंस में बमौके मेले छमाई व माह चैत व असाज व दीगर अय्याम में यात्रियान बकरे जिन्दे चढ़ाते हैं और झटका देते हैं। तमाम अहकाम हिन्दू शास्त्रों के ख़िलाफ बेचारे गरीब जानवरों का खून मुतबर्रिक परिस्तशगाह की जगह में होता है इस लिये हम पुजारियाने मन्दिर श्री कालिका देवी जी और बाशिन्दगान बहापुर वगैरहने बाहम रज़ाय खुद व रगुबत खुद सलाह कर यह भेट देना बन्द कर दिया है। आयन्दा सिर्फ जिन्दे बकरे भेंट तो करेजावें। और झटका देनेकी बिलकुल बन्दी करी जावे, इस लिये जो यात्रियान पूजा करने आवें उनको लाज़िम है कि झटका मन्दिर श्री कालिका जी और उस का हदमें बिलकुल न करें। तहरीर ता० ४ मार्च सन् १६१५ ई० मुताबिक मिती चैत्र बदी १ सं० १९७२ वि०—

बकलम गोपीनाथ कलम खुद न्यादरमल, कलम खुद दः फकीरचन्द पंडा, दः भोलानाथ नम्बरदार, किशनसहाय जोगी, [अंगूठा] जीवनलाल बकलम खुद, बिहारीलाल बल्द सुखदेव [अंगूठा] छज्जू बल्द जमनादास [अंगूठा] हीरालाल पंडा बकलम खुद बोनानाथ जोगी [अंगूठा] महताबसिंह बकलम खुद मेहरनाथ जोगी गिरपाड़ी [अंगूठा] कुड़या बल्द हरदयाल

पंडा [अंगूठा] रामदयाल बकलम खुद रामसिंह पंडा [अंगूठा] रामसिंह पंडा बकलम खुद सुलतानसिंह [अंगूठा] हरदयाल [अंगूठा] कन्हय्यालाल [अंगूठा] नन्दन [अंगूठा]

चमारों की पंचायत की तजवीज़ ॥

चौरासी घण्टे वाली कालिका माई की जय

भाइयो ! जय जगदम्बे.

इस साल में हमारे मालिक सरदार रईस शहर देहली और पूज्य पाण्डे श्री कालिका देवी बमूजिब हिन्दू शास्त्र वेद पुराण स्मृति वगैरह सब पर इश्तहार आम के जाहिर करचुके हैं कि कालिका माई की पवित्र भूमि पर बकरों का मारना बड़ा अधर्म है और पाप है क्योंकि किसी मजहब में किसी जीव का सताया जाना तक रवा नहीं है "दया ही धर्म की जड़ है" सब बड़ी छोटी हिन्दू जातिने बाहर देहातों से जीवरक्षिणी सभा देहली के पास अपने २ दस्तखत कर लिख भेजे हैं कि हम ऐसा फेल कालिका माई के मन्दिर पर नहीं चाहते जिस में बकरे मारे जावें ।

इस लिये हम सब भाई शहर देहली [तीनों बावनी] तारीख १२ सितम्बर सन् १६१५ को बस्ती कन्हया चौधरी पंचायत कर कर आपस में तजवीज कर करार देते हैं कि कालिका माई के स्थान और उस के आस पास हमारी बिरा-

दरी का कोई शख्स बकरा झटका न देवे और जो इस पंचायत का हुकम न माने उस को पंचायत का दण्ड देना होगा। इस लिये यह खबर इश्तहार से दी जाती है कि सब भाई इस तजवीज के पाबन्द रहें। रामदयाल चौ, बसन्ता चौ, दिलसुख चौ, पोहकर चौ, गङ्गादास बजीर चौ, मज्जन चौ, मोती चौ, पूरन चौ, चेना, चौ, मूला चौ, भोला चौ, हरजस चौ, लालमन चौ, यादराम चौ, पूरन चौ, नन्दराम चौ, बुद्धा चौ, पन्ना चौधरी, समाराम।

(तरजुमा अंग्रेजी दरखास्त)

श्रीयुत डिप्टी कमिश्नर

देहली प्रोविन्स

देहली

मान्यवर !

कालिका जी के मन्दिर के पुजारियों की दरख्वास्त के सिलसिले में जो मन्दिर पर पशुओं के बध रोकने के लिये दी गई है हम निम्नलिखित को भी उन की अर्जी पर इत्तिफ़ाक है

[हस्ताक्षर अंग्रेजी नागरी में और हिन्दी में]

गौरीलाल शास्त्री

शिवप्रसाद

बालाप्रसाद मजिस्ट्रेट फर्स्टक्लास देहली

रायबहादुर ला. कन्हय्यालाल रिटायर्ड ऐक्जिक्यूटिवइंजीनियर

रायबहादुर गौरीशङ्कर रिटायर्ड ऐक्जिक्यूटिव इंजीनियर

मीनामल धूलियावाले
रामचन्द्र आनरेरी मजिस्ट्रेट
रामजादास रिटायर्ड तहसीलदार
हरनारायण दास रिटायर्ड तहसीलदार
ईश्वरी प्रसाद राय साहब ट्रेजरर
मिट्ठनलाल और कई एक

तरजुमा अङ्गरेजी हुक्म मिस्टर वी कोनवली साहिब
डिप्टी कमिश्नर बहादुर—देहली.

कालिका जी के मंदिर पर बकरा के बध होने के बारे में।

गवर्मेन्ट का सर्वदा से यह ढंग रहा है कि मतों के मामलों में दखल देने से नफरत करती है। कालिका के मेले में बकरों के बध की एक पुरानी रिवाज है और उस रिवाज के बन्द करने की तजवीज़ जो हो वह हिन्दुओं और पुजारियों की तरफ से होनी चाहिये। अगर वह इस रिवाज को हिन्दू मत के शास्त्रों के प्रतिकूल समझते हैं तो वह उन मनुष्यों को समझा बुझा कर जो ऐसा करते हैं उसको रोक देवें. यह ठीक है कि शीघ्र ही उसका असर न हो सके, बकरों का बध लगभग किसी हद तक और कुछ समय तक चलता रहेगा। बध करने का स्थान इस जगह पर इसलिये नहीं है कि वह बकरों के बध को तरक्की देवें। बल्कि इसलिये है कि जो बध किये जावें तो आरोग्यता के लिहाज से किये जावें और जैसा कि हम कह चुके हैं कि

लगभग बकरे इस वर्ष ही बध किए जावेंगे इसलिए बध करने का स्थान खुला रहेगा।

बकरों के कान काटने के बारे में हम समझते हैं कि यह कर्म अधिक नहीं किया जाता पुजारियों को अपने आप ही चाहिए कि वह यात्रियों को ऐसे कर्म से विमुख रक्खें। वह मेले में अपने अख्तयार से एक इश्तिहार जारी कर सकते हैं कि यह रिवाज न रहनी चाहिये।

ऊपर का लिखा हुआ हुकम बिशन सरूप वकील को सुना दिया गया। २२-६-१६

हस्ताक्षर वी कानवली
डिप्टी कमिश्नर
देहली।

तरजुमा कालिकाजी के पुजारियों की अंग्रेजी दरख्वास्त का

जनाब डिप्टी कमिश्नर साहिब
सूबा देहली

हम श्री कालिका जी के पुजारी सरकारसे निम्न लिखित अर्ज करते हैं।

१—प्रत्येक साल में कालिका जी के मन्दिर पर चैत्र यानी अप्रैल कार यानी अक्टूबर में मौजे बहापुर तहसील व सूबा देहली में दो मेले हुआ करते हैं।

२—अलावा कई बातों के जान पड़ता है कि मेले के समय में यात्रियों में बकरों के बध कराने और उनके कान कटाने की निकृष्ट पृथा फैलती है।

३—ऊपर कही हुई पृथा में अलावः और बातों के यह बात बड़ी बेरहमी और निरदईपने की हिन्दू शास्त्रों से विरुद्ध है। और किसी धार्मिक ग्रंथ में इस कर्म की आज्ञा नहीं दी गई है और विशेष करके गवर्नमेंट की ओर से जो कानून नं० ११ सन् १८९० में पशुवों की निर्दयता पर पास हुवा है विरुद्ध है।

४—यह कि मेले के आदमियों में इस बुरी पृथा से बीमारियों के फैलने का भय रहता है इस सबब से कि बहुतसा अधकचरा पका हुआ मांस मिलता है और इस अमर का पता डाक्टरों से मिल सकता है।

५—यह नतीजा सबसे बुरी किस्म के वहम का है अर्थात् यह विचार कि बकरा कालिका देवी पर चढ़ाने से बकरे के बदले बेटा मिल जाता है या शादी हो जाती है और यह विचार उन अनपढ़ मूर्ख पुरुषों पर कसाई और बकरों की खाल खरीदने वाले पुरुष जमादेते हैं और यह अमर इन बातों से बिल्कुल साबित हो सकता है।

अ—यह कि न तो बकरे मन्दिर में जा सकते हैं और न उनको प्रशाद के तौर पर लेते हैं।

ब—यह कि यह बुरी पृथा सिर्फ नीच जातियों ही में मसलन् चमार कोली आदि में है और इस पृथा की इन्हीं तक हद है।

३—यह पृथा हिन्दू मत के नियमों से बिल्कुल विरुद्ध है और इसके सिवाय कि कालिका माई बदनाम हो और हिन्दू जाति पर बुरा असर पड़े कोई कारण नहीं है।

४—यह कि हम पुजारी विद्वान्, और सज्जन हिन्दू देहली के प्रस्ताव पास कर चुके हैं और कोशिश कर रहे हैं कि व्याख्यान देने और समझाने से यह पृथा रुक जावे परन्तु निम्नलिखित बातों से अपनी कोशिशों में कुछेक सफलता प्राप्त हुई है।

अ—कसाई लोग मेले में आवाज लगाते हैं और मूर्ख लोगों को अपनी बहकावटों से इस अपराध में सम्मिलित करते हैं।

ब—वह लोग भी जो बकरों की खाल खरीदने आते हैं वह समझ लेते हैं कि सरकार के हुकम से बकरे मारे जाते है। और खाल के दाम उतनेही जितने में कि जीवित बकरा खरीदा जाता है लगा देते हैं इस हिसाब से बिदून खर्च किये माता प्रसन्न हो

जाती है हालांकि यह बुरी पृथा सिर्फ जीभ के स्वाद के लिये है और माता से इस का कुछ ताल्लुक नहीं।

स—यह लोग जो बेचारे पशुओं के कान काटते हैं मेले में पुकारते फिरते हैं कि कान कटाने में बहुत कम दाम लगेंगे।

द—आखीर हमें ना कामयाबी का बड़ा सबब यह है कि सरकार बूचड़खाने का ठेका देती है और एक मकान इसलिये बना दिया है कि जिससे मूर्ख लोग यह समझते हैं कि इस बुरी पृथा को सरकार ने भी मान लिया है और जुर्अत दिलाती है।

८—यह कि वर्तमान सूबा देहली ने भी इस बात में इत्तिफाक कर लिया है और देहली के चमारों ने भी अपनी पंचायत में इस पृथा को दूर करने के लिये प्रस्ताव पास कर लिया है और सब चौधरियों के हस्ताक्षर भी इस बात से कि सरकार मुलाहिज़ा कर सकती है, ले लिये गये हैं और ज्यादहतर इस बुरी पृथा को यही लोग मानते हैं।

९—यह कि बाहर के आसपास के हिन्दू लोगों ने भी इस बुरी पृथा को बहुत बुरा समझा है और इस अमर से तसदीक हो सकता है कि बहुत से आदमियों ने इस बात पर हस्ताक्षर कर दिये हैं कि यह पृथा बुरी है।

10-इस लिये ऊपर लिखे हालात में हम सावलान निहायत अदब से अर्ज करते हैं कि निम्न लिखित हुक्म सरकार से प्रगट किये जावें।

अ—यह कि कसाई लोगों को मंदिर की जमीन में और उस के आस पास आने की आज्ञा न दी जावे और मुमानियत को जावे कि यात्रियों को बकरे वध करने के लिये न वहकावें।

ब—यह लोग जो जीवित बकरों के कान काटते हैं उनका बमूजिब कानूनन क्रूलिटी टू ऐनीमल्स ऐक्ट (cruetly to animals act) चालान किया जावे।

स—ठेका मेले का बंद किया जावे।

ह० बिशनसरूप वकील, हस्ताक्षर उर्दू हिन्दीमें और निम्नलिखित अंगूठांक चिह्न बिहारी, हीरालाल, फतेह चंद, खुशहालीराम ब्राह्मण; भगवानसहाय, रामजी-लाल, कन्हैयालाल, गांर्धन, जीवन, हरदयाल, नानक, किशनसहाय, मेहरनाथ, रामचंद, अलयंस मुलतान, छुज्जू मिथीलाल, चौधरी न्यादर-मल पंडा, जमादार रामजीलाल पंडा, जगन्नाथ जैना।

जीवरक्षिणी सभा देहली का जल्सा कालका जी पर बकरों के वध न होने के हर्ष में।

आसोज सुदी ८ तारीख ४ अक्टूबर सन् १९१८ ई० को समय मध्याह्न सभासद व समस्त हिन्दू और अन्य जाति उपस्थित थे और जिस जल्से में जनाब नायब तहसीलदार साहिब, डाक्टर साहिब बड़े व छोटे, जनाब इन्स्पेक्टर साहिब थानेदार साहिब पुलिस, सरकारी खजानची देहली और भी कई रईस देहली के अपने २ अनमोल समय को इसी सभा के जल्से में व्यतीत कर रहे थे। सारांश जलसा यह है।

१—मंगलाचरण पण्डित शास्त्री जी के किये आमेवाद जनाब इन्स्पेक्टर साहिब को सभापति बनाने के लिये सभा ने प्रार्थना की समर्थन होने हुए जनाब इन्स्पेक्टर साहिब ने भी स्वीकार करके जलसे को अपने वचनों द्वारा सुशोभित किया।

२—जीव रक्षिणी सभा का विवरण अति संतोष से हुआ और भजन हुवे तत्पश्चात् परमेश्वर का धन्यवाद देते हुवे अपने महाराजाधिराज राज राजेश्वर सम्राट जार्ज पंजम को धन्यवाद देकर समस्त उपस्थित जनों ने अपने सरकार

इंगलेशिया की विजय (युरुप के युद्ध में) के लिये उच्च-स्वर से वारंवार कालिकामाई से दुवा मांगी।

३—सभापति साहिब को जाति के इसलाम साहिब ने हर्ष के साथ अपने खुदावंद ताला से सरकार की विजय के लिये दुवा माँगी और इस सभा की उन्नति (जीव रक्षार्थं) के लिये भी हार्दिक प्रेम से दुवा मांगी।

४—कालिका माई के पंडे' पुजारी, जोगी आदि जनों ने बहुत उच्च स्वर से कालिकामाई की जय करके मंत्री जगन्नाथ जी को धन्यवाद दिया और सभा विसर्जन हुई।

श्रीमान् महाशय द्रव्यदाताओं के नाम

बाबू जग्गोमल जी पहाड़ी, मुंशी ज्ञानेश्वर दास माहल, बाबू हीरालाल जी योगीराज, ला० बहादुरमल बाटीमल जी, ला० मक्खनलाल जी, ला० अमरसिंह भगवानदास जी, ओसमाज नयामन्दिर जी, ला० मोतीलाल जी, ला० मंगलचंद जी, ला० कन्हैयालाल जी, बा० हरीचंद जी, पं० फतेहचंद जी, गुप्त—ला० मनोहरलाल जी जोहरी, ला० जग्गीमल बुलाकीदास जी, ला० सुन्दरलाल जी जोहरी, ला० सन्तलाल जी, ला० सोहनलाल तिलोकचंदजी, ला० मोतीरामजी, ला० हजारीलाल जी, जोहरी, ला० पारसदास जी मन्सूरी वाले, ला० भैरवाल मिट्ठनलाल जी, बा० हरबंसराम जी,

ओसमाज पहाड़ाधीरज, ओसमाज मा० रामदेवी, मानक मुनाजी स्वेताम्बर सभा देहली, सेठ हरीभाई देवकरण जी सोलापुर, रायबहादुर ला० कस्तूरचंद जी इन्दौर, ला० कुंदन लालजी, ला० प्यारेलाल जी ला० घमंडीलालजी, ला० मोतीराम जी भगत ला० दौलतराम बनारसीदास जी, पं० अनन्तराम जी छापेखाने वाले, ला० मुन्नालाल जी, ला० जानकीदास जोहरी-मलजी, ला० जुगलकिशोर गुलाबसिंह जी, ला० उमरावसिंह फकीरचंद जी, ला० लाहौरीमल नत्थुमल जी, ला० मुन्शीराम सुलतानसिंह जी, ला० कानचनलाल जी, ला० निरभैराम जी, ला० नियादरमल धरमदास जी दलाल, ला० धूमीमल धरम-दास जी कागजी, ला० कल्लूमल जी, ला० लाडलीप्रसाद जी बजाजला० जैनारायण बंशीधर जी, ला० नन्नूमल जी कागजी, ला० मिट्ठनलाल जी, ला० मनोहरलाल बुद्धनमल जी, ला० मथुरादास प्रभुदयाल जी, ला० हीरालाल श्योनारायणजी, ला० जंगलीमल रामचंद्र जी, ला० मुन्शीराम जी तहसीलदार पेन्शनर, ला० पारसदास जी खजानची, सूरविजय नाटक समाज की बचन मा० श्रीराम के, ला० ठाकुरदास नागर-मल जी ला० रघुनाथदास जी खिलौने वाले, खंडेलवाल भाइयों के, ला० दलेलसिंहजी ओसवाल, ला० निद्धामल नन्नू-मलजी, ला० छोगलाल जी नसीराबाद वाले, ला० राजमलजी नसीराबाद, ला० प्यारेलाल जी, नसीराबाद, ला०लक्ष्मीचंद जी नसीराबाद, लाला धनीराम परमेशरीदास जी गुवालियर,

श्रीमती किरपाबाई, ला० पन्नालाल जी फीरोजाबाद, लाला बैजनाथ जी कोसी, ला० गंगादीनजी नसीराबाद, महाराजधार, स्त्रीसमाज हस्तिनापुर; बा० शम्भूदयाल जी डिकट कलक्टर, ला० मांगीलाल जी तहसीलदार देहली, बा० हीरालाल जी मीर मुन्शी उदैपुर, शर्माजी मद्रास वाले, स्त्रीसमाज मा० पटपड़ वालीबाई, ला० भोलानाथ जी जयपुर, ला० चैनसुख दास अमरचंद जी कोसी, बा० अजितप्रशादजी वकील लखनऊ बा० रामलाल जी पूना, ला० किशोरीलाल जी अजमेर,
बा० रिखबदासजी, बा० नत्थनलाल जी, श्रीफन साहिब सरदारीमलजी, मा० ला० मुरारीलाल जी अंबाला, छावनी बा० बैजनाथजी सेठ जगजीवनदास लवजी बम्बई, बा० विमलप्रशाद जी वकील सहारनपुर, सेठ हमीरमल मगनमल जी अजमेर, बा० जगतप्रशाद जी लाहौर, ला० बनारसीदास मनोहरलाल जी छावनी अम्बाला, ला० कूड़ेमल बनारसीदास जी सदर देहली, ला० रामजीदास जी सूतवाले सदर बाजार पहाड़ी, मास्टर बिहारीलाल जी अमरोहा, बा० विश्वम्भरनाथ जी हेडक्लर्क जोधपुर, ला० जैगोपाल जी संभालका,
ला० कल्लूमल जी आटे वाले, पं० करमचंद जी, ला० तोताराम जी घी वाले, ला० शोभाराम गोपालराम जी हापुड़,
ला० नैनसुखराय सिगनचंद दलाल हापुड़, ला० नरायणदास जी हापुड़, ला० जग्गीमल जी जगन्नाथ जी हापुड़, ला० मनोहर लाल जी हापुड़, ला० गनेशीलाल जी भगवानदास जी हापुड़,

ला० रामसरूप जी हापुड़, ला० गंगानाथ भोलानाथ जी कसेरे हापुड़, ला० किशोरीलाल रामसरूप जी हापुड़, ला० चिरंजी-लाल रूपचंद जी हापुड़; ला० जानकीदास जौहरीमल जी, ला० जनेश्वरदास जी; ला० चंदनलाल जानकीदास जी ठीकरी ला० जगन्नाथ जी मंत्री।

॥ श्रीः ॥

कालिका देवी पर पशु-वध बन्द होगया

दयालु सज्जनों को पशु बध बन्द होने का समाचार सुन कर हर्ष होगा। बकरे आदि निरीह प्राणियों का धर्म और मङ्गलकार्य्य समझ कर जान लेना और यह मान लेना कि देवी इससे प्रसन्न होगी सिवाय अज्ञान के और क्या कहा जा सकता है। यह प्रथा चाहे जिस ज़माने से चली हो, पर जिस के मूल में यही ग़लती है वह वृक्ष सुफल नहीं फल सकता। इस से केवल पशु-बध का ही दोष हमारे सिर न था, अपितु अज्ञान की भीम गर्जना भी हमारे सिर पर अपना त्रिशूल लिये खड़ी दोबती थी। प्रसन्नता की बात है कि सब धर्मों के मानने वालों ने एक स्वर से इसका विरोध किया। और अन्त में वह प्रथा बन्द ही होगई। नवरात्र की अष्टमी अर्थात् ४ अक्टूबर १९१६ ई० को कालिका देवी के मन्दिर पर एक भी जीव की हिंसा नहीं हो सकी। देवी के पुजारी ब्राह्मण तथा जोगी, दिल्ली

नगर के निवासी; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा चमारों आदि की पंचायतें और सरकारी अफ़सरों की निष्पक्षनीति (जो तारीख २२ सितम्बर १९१६ को दी गई है) की सहायता से यह पवित्र कार्य इस स्मृत पर आया है। आशा की जाती है कि भविष्य में सदा यह पशु वध की पृथा बन्द ही रहेगी और जो सहायक बने हैं वे सब सहायकही रहेंगे। इसी विज्ञापन के द्वारा उन लोगों को भी सूचना दी जाती है जो पशुबलि की महानता मानते हैं। उन्हें यह समझ कर कि अपने बालकों को जीवनान्त वेदना पहुँचा कर माता कालिका प्रसन्न नहीं हो सकती बल्कि नाराज़ ही होती है—वे पशुबलि न बोलें। किसी भक्त पुजारी की बहकावट में आकर भी अपने लिये नरक का दरवाज़ा न खोलें। जो लोग अपने बकरे बेचने लाते हैं वे भी वे फायदे कष्ट न उठावें। अन्त में भगवान से प्रार्थना है कि इस सर्वमान्य अहिंसा धर्म का इस ही प्रकार सब जगह विजय हो।

भवदीय—

जगन्नाथ जैनी जौहरी

मन्त्री जीव रक्षिणी सभा देहली

दूकान कबाब गोश्त फरोशी की लगती थी। उसको पंचों ने उठा दिया था कबाबी दूकानदार ने सरकार में दूकान क़ायम रखने के लिये अर्ज़ी दी जिस पर निम्नलिखित हुक्म हुआ।

नं० मुकद्दमा ८१ दायरा २१—११—१६

फैसला १०-१-१७ मौजे कालिका अज मुहाफिज़खाना

नक्ल हुक्म मिस्टर वी कानवली साहिब बहादुर एडीशनल डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट सूबा देहली।

बर दरखास्त बेनी प्रसाद बरवाग इजाजत खोलने दूकान हिन्दू गोश्त कबाब बमौके मेले कालिका सूबा देहली।

सायल की तरफ से बाबू ज्वालाप्रसाद वकील हाजिर है रिपोर्ट नायब तहसीलदार साहिब महरौली समाअत हुई चूंकि यह जगह मन्दिर के मुत्तालिक है इसलिये हम कोई मदाखलत करना नहीं चाहते दरखास्त खारिज दाखिल दफ्तर होवे

तहरीर १०—१—१७ दस्तखत अंग्रेजी मिस्टर

वी० कानवली साहिब बहादुर एडीशनल

डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट सूबा देहली।

विज्ञापन।

सर्व सज्जनों को सूचित किया जाता है कि मन्दिर श्री कालिका देवी का मेला कुमाई ग्राम बहापुर में ता० २९-३०-३१ मार्च सन् १९१७ ई० अर्थात चैत्र सुदी ७-८-९ को होगा—सर्व

यात्रीगणों को सादर सूचित किया जाता है कि पिछले मेले अक्टूबर यानी आश्विन में जैसे हुआ था वैसे ही कालिका-देवी पर बकरे मारने को न लावें और न किसी बकरे के कान कटावें क्योंकि पहले पुजारियों की ओर से (हस्बुलहिदायत सरकार गवर्नमेंट आलिया के ता० २२ सितम्बर सन् १६१६ ई०) मनादी हो चुकी है कि कोई बकरा उस पवित्र स्थान कालिका देवी और उसकी हदहदूद में वध न किया जावे। और न किसी बकरे का कान काटा जावे।

(१) नोट—इस पुनः सूचना का कारण यह है कि इस वर्ष भी प्रत्येक आनेवाला यात्री इस घोषणा से परिचित रहे।

(२) नोट—मुसलमान महाशय पेशा कसाई और बकरे बेचने वाले और दूकानदार कबाबी के लिये वही शिक्षा है जो पहिले हो चुकी है अर्थात् मेले के समय में वह महाशय आने व दूकान लाने का कष्ट न उठावें।

ह० न्यादरमल पंडा ह० पञ्चमनाथ ह० बाबा संज्यानाथ,

अहिंसाधर्म्म की जय।

(देवी कालिका जी पर पशुवध बन्द होगया !)

श्री देवीकालिका जी पर धर्म का नाम लेकर बकरे आदि का वध किया जाता था। वह "जीवरक्षिणी सभा देहली" के उद्योग से न गत छमाही हो सका, और न इस बार चैत्र सुदी ८ नौरात्री दिवस सं० १९७४ वि० का। इस धर्मयज्ञ में सनातनी, आर्यसमाजी, जैनी, आदि सभी सम्प्रदायों के भाइयों ने योग दिया था। अवश्य ही पवित्र मंदिरों में अविचार और मूर्खता से यह प्रथा प्रचलित हुई होगी। पर इस रोशनी के ज़माने में भी इस का प्रचलित रहना सभ्यता का कलंक है। प्रसन्नता की बात है कि दिल्ली के निकट से तो यह बन्द हो गई, इस के लिये सभा सब जीवरक्षा चाहने वाले भाइयों और दयालु गवर्नमेन्ट को धन्यवाद देती है।

इस ही प्रकार और जहां २ यह प्रथा प्रचलित हो वहां के भाइयों को चाहिये कि इस अनीति को दूर करने के लिये कमर कस कर उद्योग करें। अवश्य ही अहिंसा धर्म की जय होगी। इस अहिंसा धर्म के प्रभाव से यहां चमारों की पंचायतों और जोगियों पुजारियों तक ने इस के लिये प्रयास किया है। ये सब मूक जीवों पर दयालु बने हैं। इस का बदला केवल धन्यवाद से नहीं हो सकता। जन्मजन्मान्तिर तक ये संस्कार उन्हें उच्च बनाते रहेंगे।

धर्म किसी को हिंसा करना नहीं सिखाता । जो करते हैं वे अपनी मूर्खता और नासमझी से । योरप के बड़े २ डाक्टर भी अब अपनी राय देने लगे हैं कि दूध, दही और फल खाने से शरीर मज़बूत और आयु लम्बी होती है, तथा माँस खाने से नाना प्रकार की बीमारियाँ पैदा होती हैं और उमर घटती है। अब सब संसार चेत रहा है, जीव रक्षक धर्म को सभी श्रेष्ठ धर्म मानने लगे हैं। ऐसी दशा में जिनके बाप दादा जीवरक्षक रहे हैं उन का धर्म के नाम पर पशुओं के गले काटना बहुत ही बुरी बात है। देवी कालिका पर ऐसी ही सैकड़ों जानवरों की बलि होती थी वह धर्म प्रेमी भाइयों के उद्योग से बन्द हो गई। इसलिये इस आनन्द की सब भाइयों को बधाई है।

और भी जहां ऐसा काम होता हो वहां के भाइयों को चाहिये कि कोशिश करके बन्द करावें और अत्यन्त पुण्य के भागी बनें। और जीवरक्षिणी सभा देहली को सूचित करें।

जगन्नाथ जैनी जौहरी

मन्त्री जीवरक्षिणी सभा; देहली

VICTORY TO THE RELIGION OF PEACE & MERCY

Abolition of Animal sacrifices of Kalika Devijee

The slaughter of goats which used to take place at the shrine of Goddess Kalika was, through the efforts of the JIVA RAKSHINI SABHA, Delhi, put a stop to at the last fair during the Navratri days in Chaitra, 1974, and in the six-monthly fair preceding that.

Sanatanists, Aryasamajists, Jains and others joined in this religious celebration.

The custom of animal sacrifices in sacred temples must have had its origin in ignorance and indifference, and, of course, it could not continue to exist as a blot on civilization in the present enlightened times.

It is a matter for congratulation for the Government and for all humanitarians that the eivil custom has been abolished in and near Delhi.

Similar efforts should, however, be made in all other places where this cruel custom is prevalent and success to the Religion of Peace and Mercy is sure to attend.

The Chamar Panchayats, Jogis, and Pujaries were all moved by the feelings of mercy to join in the abolition of the custom. This kindness to the

mute creation is sure to bring fruit in future births and re-births, in helping the spiritual evolution of all concerned.

Religion never inclucates killing. Those who kill do so through their own ignorance and thoughtlessness. Eminent European Doctors have given their opinions establishing that physical strength and long life is attained by taking milk, curd, and fruit's that flesh eating gives rise to various diseases, and shortens life.

It is really sad to think of persons whose ancestors have protected animal life, slaughtering animals in the name of religion

The huge sacrifices at Gooddess Kalika have been abolished through the exertions of religious and tender-hearted gentlemen. Congratulation to all concerned.

Other persons should follow the example of Delhi to bring about the abolition of animal sacrifices in other places and to obtain religious merit thereby.

An intimation of the result of their efforts in this direction to the undersigned will lay him under a special obligation.

JAGAN NATH JAINI, Jeweller.
Secretary, JIVARAKSHINI SABHA, Delhi.

प्रबन्ध बकरों के बध न होने में

जीवरक्षिणी सभा की ओर से जीव-रक्षिणी सभा के सभासदों के सिवाय जिन सज्जन पुरुषों व विद्यार्थियों ने वालन्टियरी आदि कार्य ग्रहण करके व्याख्यान, समझाने व प्रबन्ध करने में सहायता दी थी उन महाशयों के निम्न लिखित नाम हैं।

जिन का हर छुमाई पर काम करने का हार्दिक उत्साह रहा। जिस उत्साह का उनको धन्यवाद देने के लिये कोई भी शब्द लेखनी में नहीं आता, तो भी इस कहे जाने से चुप चाप नहीं रहा जाता कि उनको इस हार्दिक उत्साह से जीव रक्षार्थ में अपने तन मन लगाने का फल इस पर्याय और आगामी भव में सुख सम्पत्ति प्राप्त हो—

रामजस स्कूल के लड़के छोटे बड़े आदि और विद्यार्थी और भिन्न २ जोशीले दया के प्रेमी लड़के व बड़े—और जिन की सहायता से कार्य सिद्धि हुई उनके नाम हैं:—

सहायक	उपदेशक व प्रचारक
१ राय बहादुर ला० कन्हया लाल जी इन्जीनियर	१ शिवनारायण द्विवेदी
२ मिस्टर श्रीराम जी बैरिस्टर	२ प० लक्ष्मीनारायण जी शास्त्री
३ बा० बिशन सरूप जी वकील	३ पं० रामचंद्र जी
४ ला० मीनामल जी धूलिया वाले आनरेरी मैजिस्ट्रेट	४ गणेशदत्त भजनमण्डली
५ पं० अनन्तराम जी छापेखाने वाले, आदि	५ मेघदत्त
	६ बंशी
	७ हरनामसिंह
	८ नंदकिशोर, आदि

सूचना

पुस्तक बिना मूल्य–

१ पशुवध बन्द, हिन्दी
२ Cruelties of the meat Trade
३ To Flesh eating morally Defensible
४ वनस्पत्याहार का महत्व

मूल्य सहित

५	इन्सानी गिज़ा उर्दू	)॥
६	जीवरक्षादर्पण भाग २	१)
७	आईने हमदरदी उर्दू में	।।।)
८	मनुष्य आहार	)॥
६	Essay of the advantages of a Vegitarian Diet	

मिलने का पता :—

कार्य्यालय–जीवरक्षिणी सभा
बड़ा दरीबा देहली.



पुष्प १५

॥ श्रीमद्वीराय नमः ॥

जैनदर्शन और जैनधर्म

मूल लेखक—

मिस्टर हर्बर्टवारन ।

गुजराती अनुवादकर्त्ता—

मि० लालन ।

हिन्दी अनुवादक—

कन्हैयालाल भार्गव, ब्यावर

प्रकाशक—

जैनपुस्तक प्रकाशक कार्यालय

ब्यावर ।

प्रति) २४४६ (मूल्य ६ पाई
२०००) सन् १९२० (२॥) सैकड़ा

पण्डित [illegible] दीक्षित के प्रबन्ध से
मित्र प्रेस, इटावा में मुद्रित ।



* प्रार्थना *

श्रीजैन पुस्तक प्रकाशक कार्यालय, ब्यावर द्वारा सर्व साधारण में जैनधर्म व जीव दया का प्रचार व सदाचार की प्रवृत्ति हेतु नाना प्रकारकी पुस्तकें प्रकाशित हुआ करती हैं।

१—इसके लिये जो सज्जन पुस्तक लिखकर या अनुवाद कर कर भेजेंगे उनकी यह संस्था अति कृतज्ञ होगी।

२—पुस्तक का अविनय न हो इस हेतु कुछ न कुछ मूल्य अवश्य रक्खा जावेगा।

३—पुस्तकों की बिक्री का मूल्य पुस्तक प्रकाशन के कार्य्य में ही लगाया जाता है।

४—कार्यालय के सर्व कार्य्यकर्त्ता निस्वार्थ सेवा कर रहे हैं।

५—समाज के विद्वान, दानवीर, उत्साही, प्रभावना करने वाले इत्यादि सब ही प्रकार के सज्जनों का कार्यालय को प्रत्येक प्रकार की सहायता देने का कर्त्तव्य है।





* जैनदर्शन और जैनधर्म *



जैनदर्शन में जैन तत्त्वज्ञान का और जैनधर्म में जैन नीति, जैनियों के चरित्र और उनकी धर्म क्रिया का वृत्तान्त हो सकता है। जैनियों की श्रद्धा को भी जैनधर्म में ले सकते है। हिन्दुस्तान की जातियों में जैनियों की भी एक जाति है। जो न्यूनाधिक सब देश में फैली हुई है। परन्तु उनका मुख्य निवास उत्तर. पश्चिम दिल्ली, बम्बई और अहमदाबाद में है। यह एक प्रतिष्ठित जाति गिनी जाती है। परन्तु इनकी संख्या घटती जाती है। इसलिये वर्त्तमान में वे अनुमान पन्द्रह लाख के अन्दर हैं। साधारणतः यह धनवान लोग हैं और जिन थोड़े से मनुष्यों से मुझे लन्दन में मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है ; वे बहुत अच्छे और कुलीन गृहस्थ हैं।

पश्चिमी देशों में जैन सिद्धान्त उचित रूप में नहीं पहुंचे, और जो पहुंचे हैं वे समझाये नहीं गये और अशुद्ध रूप में दर्शाये गये हैं। जैनियों का मुख्य सिद्धान्त "प्राणी मात्र को कष्ट नहीं देना" है। और इस सिद्धान्त का मूल विश्व के प्रमा-

णिक ज्ञान पर निर्भर है। जब मनुष्य अपना और विश्व का ज्ञान प्राप्त कर लेता है तब वह लोगों के माने हुए विचारों को मानने के लिये वाध्य नहीं होता है यही नहीं किन्तु वह अपने स्वीकृत मन्तव्यों को समझाने के लिये दूसरे मनुष्यों के वास्ते उक्त ज्ञान का द्वार बन जाता है। ज्यों ज्यों मनुष्य अपना तथा अन्य लोगों का जितना जितना ज्ञान प्राप्त करता जाता है उतना ही उसमें प्रेम भाव बढ़ता जाता है। "प्राणी मात्र को कष्ट नहीं देना" यह सिद्धान्त प्रेम ही पर निर्धारित है और ज्यों ज्यों मनुष्य में प्रेम उत्पन्न होता है त्यों त्यों यह सिद्धान्त उसको मन, वचन, और काया से अन्य लोगों को कष्ट पहुंचाने से रोकता है।

जैनी, विकाश (Development) के विचार की प्रतिष्ठा करते हैं और मानते हैं कि सजीव प्राणी अपनी पूर्ण दशा तक विकाश कर सकता है। ज्ञान और चरित्र की पूर्ति अथवा पूर्ण योग्यता इसीमें है कि किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार से कष्ट नहीं पहुंचाना, (तथा किसी प्रकार का अज्ञान नहीं रखना) उनका लक्ष्य किसी प्रकार से सर्व सत्ता से कम नहीं, किन्तु आशावादी (Oppimistic) है। वह आत्मा को अनन्त बलशाली तथा आनन्दयुक्त मानते हैं।

विश्व ।

संसार ज्ञान यह है कि संसार अनादिकाल से है, और रहेगा भी। अस्तु, इसका आदिकाल खोजना निरर्थक है। अमुक २ वस्तु नित्य होती रहती हैं और मिटती रहती है। तथापि भिन्न भिन्न वस्तुओं की उत्पत्ति और नाश की अवस्था होने पर भी संसार नित्य है। जब कोई वस्तु प्रगट होता होता है। तो पर परन्तु कोई दूसरी वस्तु में से निकल कर प्रगट होती है अर्थात् जब पक्षी जन्मता है तो जिस अण्डे में वह था वह नाश हो जाता है, परन्तु जिस पदार्थ से वह अण्डा तथा वह पक्षी बना था वह द्रव्य सर्वदा उपस्थित रहा है—अण्डे का तथा पक्षी का बना है। यह सिद्धान्त प्रत्येक पदार्थ के लिये सत्य है। केवल अवस्था में परिवर्तन होता है, परन्तु पदार्थ ज्यों का त्यों रहता है। जिस द्रव्यमें से वस्तुएं बनती हैं। वह किसी न किसी दशा में और किसी न किसी स्थान पर रहता ही है और रहेगा। अति पूर्वकाल में किसी भी समय वा कोई भी काल में दृष्टि करने से उस काल को जगत् का आदिकाल मानना उचित नहीं। जिस पदार्थ का यह जगत् बना है उसी पदार्थ का बनता आरहा है। अस्तु, अति प्राचीन-

काल में जाने, तथा उस काल को जगत् का आदिकाल मानने के स्थान में हम अभी के जगत् को ही आदि समझने लगें तो ठीक होगा इसी को आदि गिन करके दूर दूर तक सब दिशाओं में आगे पीछे ज्योति फैलावें (अर्थात् जैन-धर्म के सिद्धान्तों को विस्तृत रूप से प्रचार करें) जिस प्रकार समुद्र के किनारे पर खड़ा हुआ मनुष्य अपनी दृष्टि के विस्तार को सीमाबद्ध नहीं कर सकता इसी प्रकार हम देश तथा काल का अन्त कभी नहीं पा सकेंगे। समुद्र में जहाज कहीं भी हो परन्तु वहां से दृष्टि सीमाबद्ध हो सकती है वैसे ही देश अथवा काल के किसी भाग को आदि रूप में गिन लो परन्तु उसके पहिले क्या था कहां समझना ? यह प्रश्न हमेशा उठेगा।

संसार किसका बना हुआ है ?

दो मुख्य वस्तुओं का। अर्थात् पदार्थ और द्रव्य से विश्व बना हुआ है चैतन्य और जड़ (सचराचर) जीव। जैनशास्त्र इन दो पदार्थों को मानता है अर्थात् अनन्त पदार्थ और जड़ जीव। निस्सन्देह इन दोनों की स्थिति देश तथा काल में है। काल तो साधारणतया सत्य गिना जाता है परन्तु देश

तो सत्य ही है और जो सत्य है सो अवश्य स्थित है। चार पदार्थ अर्थात् आकाश (देश) काल, जीव और अचैतन्य परमाणु, यह कोई किसी के पैदा किये हुए हों यह आवश्यक नहीं क्योंकि पदार्थों का स्वभाव है कि वे स्वयं स्थित रहें।

वे अनादिकाल से थे, हैं, और रहेंगे। ईसाई धर्म में यह विचार एक जीव के लिये मानते हैं परन्तु जैन प्रत्येक जीव के लिये यह विचार स्वीकार करते हैं अर्थात् आप, मैं, कुत्ता, बिल्ली इत्यादि सर्व प्राणी नित्य हैं।

यदि वर्तमान काल की रसायनिक शोध की दृष्टि से जड़ द्रव्य के अन्तिम परमाणु को आप न गिनें परन्तु वह अधिकतर सूक्ष्म परमाणुओं का बना हुआ है। अस्तु इसके लिये हमको जड़ द्रव्य का अति सूक्ष्म अन्तिम भाग, या कोई दूसरा शब्द व्यवहार करना चाहिये।

जीव और जड़।

अब अपने जीव के सम्बन्ध में जो हम अभी के संस्कार से शोध करना आरम्भ करें तो पहिली ध्यान देने योग्य बात यह है कि हम देहधारी संसारी जीव शरीर तथा आत्मा से बने हुए हैं अर्थात् जड़ और चैतन्य मिश्रित हैं।

अपने चारों ओर जो हम सब जोव देखते हैं जैसे मनुष्य बिल्ली, कुत्ते, घोड़े वृक्ष यह सब शरीर सहित आत्मा दोनों एक हैं तौ भी परस्पर भिन्न हैं। मेरा शरीर है सो मैं स्वयम् नहीं हूं यह भेद जानना अत्यन्त आवश्यक है। यह शरीर नहीं किन्तु आत्मा है जिसे बुद्धि मान व्यक्ति (Consience, Santienty entity) कहता है।

आत्मा ही सब कुछ जानता है शरीर कुछ नहीं जनता। आत्मा का जीवन ज्ञान सहित, विचार सहित और प्रामाणिक है और जिस परिमाण में विचार सत्य होते हैं वहीं तक जीवन भी सत्य है।

आत्म द्रव्य।

वस्तु द्रव्य अपने मूल गुणों से भिन्न कभी नहीं रह सकती अर्थात् हम गुण को द्रव्य से यथार्थ में पृथक् नहीं कर सकते विचार रूप में ऐसा अवश्य सकते हैं। हम देखते हैं कि मरते समय शरीर अपनी सुधि खो देता है अस्तु यह सिद्ध होता है कि विवेक और सुधि शरीर के गुण नहीं हैं अर्थात् जीते हुए शरीर के साथ कोई सत्य वस्तु होनी चाहिये कि जिसके

गुण उसके साथ रहते हैं इस वस्तु को जीव कहते हैं जीव के पर्यायवाची अनेक शब्द हैं यथा आत्मा अहं स्वयं (Self, Spirit, ego, soul)

शरीर रहित या शरीर सहित जीव।

जब जीव पूर्णतया पवित्र होता है तो वह कोई प्रकार के भी शरीर बिना रह सकता है। सूक्ष्मातिसूक्ष्म शरीर भी नहीं हो तो भी ठहर सकता है। परन्तु वह किसी प्रकार की स्थिति धारण करे तब तक सजीव प्राणी दो वस्तुओं अर्थात् जड़ और आत्मा से मिलकर बना है।

मृत्यु समय आवे तब तक आत्मा और स्थूल शरीर भिन्न होने का यह अर्थ नहीं कि आत्मा जड़ शरीर से मुक्त हो जाय जीव जिस प्रकार स्थूल शरीर को छोड़ जाता है वैसे ही मरती समय वह अन्य दो शरीरों से नहीं छूट सकता परन्तु वे शरीर उसकी नई अवस्था में उसके साथ ही रहते हैं इनमें से एक में उत्तेजक शक्ति होती है जिससे फिर सजीव प्राणी स्वयं अपना नवीन शरीर पैदा करता है।

जीव को होती हुई भ्रांति ।

संसारी देहधारी जीव सामान्यरूप से अनेक बल प्रवाहों (अर्थात् शक्तियां) का केन्द्र होता है। ये शक्तियें आत्मा का गुण नहीं हैं परन्तु उनके साथ आत्मा का अत्यन्त सूक्ष्मरूप से सम्बन्ध है और वह उनको अपने समझ लेता है और मानता है कि मैं उनका बना हुआ हूं। इस मिथ्या भाव में से वह जागृत हो अर्थात् अपने आपको जाने वहां तक उसको इस अवस्था में पड़ा रहना पड़ता है।

बल प्रवाह शक्ति अर्थात् कर्म ।

हमारे आस पास चारों ओर जो समस्त फेरफार दृष्टिगत होते हैं उनका कारण यही है। यह अन्तर केवल स्थूल शरीरमात्र के ही हैं यही नहीं, परन्तु सद्गुण दुर्गुण आदि का भी प्रभाव पड़ता है।

आत्मा का स्वभाव कैसा है ।

आत्मा स्वभाविकतया दैवी है और शुद्ध दशा में अगाध भांति से ज्ञानवान वीर्यवान तथा चारित्रवान है। पापी आत्मा के समान जगत् में कुछ नहीं है जो मनुष्य पाप करता है तो अपने में स्थित इन अस्वाभाविक शक्तियों के कारण

करता है क्योंकि वे सन्देहवश दुष्कर्मों को अपने गुण समझ लेती है। मनुष्य अज्ञानता अथवा दुर्बुद्धि के कारण पाप कर्म करता है परन्तु आत्मा तो स्वभाव से ही सर्वज्ञ है अस्तु उसके सब विचार सत्य ही होते हैं। मेरे ध्यान में पाप कर्म करते समय कोई मनुष्य यह नहीं जानता होगा कि मैं पाप करता हूं। यदि विचार करता होगा तो यही कि मैं भला करता हूं अन्यथा ऐसा कदापि नहीं करता अस्तु यह बोध उसकी दुर्बुद्धि का ही रहा। ऐसे ही यदि कोई मनुष्य कपट करता है तो प्रसंगवश वह उसे भी अच्छा ही समझ कर करता है। परन्तु समय पड़ने पर जब वह समझ लेता है कि यह कर्म बुरा है तब वह उसे छोड़ने का प्रयत्न करता है और अन्त में शुद्ध इच्छा होने पर छोड़ भी सकता है।

कर्मों का मूल।

ऊपर लिखित अस्वाभाविक बल प्रवाह कर्मों के मूल अर्थात् जड़ हैं और ये अत्यन्त सूक्ष्म होती हैं उनको यह कर्म करने में मिला देते हैं और उसके परिणाम का अनुभव आत्मा को करना पड़ता है। अस्तु, कतिपय परिणाम उत्तम तथा कितनों का बुरा होता है। अर्थात् कुछ सुखकर तथा कुछ दुख के कारण होजाते हैं।

कर्मों के स्वभाव ।

इस प्रकार के अस्वाभाविक कर्मों का स्वभाव आत्मा के कितने ही गुणों को ढक देना है इससे समझ में आ जायगा कि क्यों कुछ मनुष्य दूसरे मनुष्यों से अधिक अज्ञानी, दुखी, सुखहीन, अल्पायु तथा निर्बल अथवा विशेष सुखी, सुन्दर स्वरूप, दीर्घायु तथा सबल होते हैं कुछ उच्च वर्ण में उत्पन्न होते हैं और कुछ नीच वर्ण में। इत्यादि जहां तक विचार करें यह कर्म का ही फल ज्ञात होगा।

कर्म को रोकने से भविष्य परिणाम ।

अब ज्यों २ इन कर्मों का ग्रहण करके अपने साथ मिलाने की क्रिया बन्द हो जाती है और ज्यों ज्यों पूर्व जन्मान्तरों में एकत्रित किया कर्मों का समूह अपने से दूर किया जाता है। त्यों २ मनुष्य के अज्ञान, कृशता, दुःख, दुर्बलता में कमी होती जाती है और इस प्रकार से वे सत्य ज्ञानवान बन जाते हैं।

इस प्रकार अपनी विचार शक्ति का केन्द्र यदि हम वर्त्तमान युग तथा विश्व को मानलें तो हमारे चारों ओर यावत् जाते हुए प्राणी जो हम देखते हैं वे सब आत्मा तथा जड़ पदार्थ के मिश्रित रूप से दिखाई देंगे।

शाश्वत जीवन।

यदि संसार को हम यह समझें कि यह नित्य है तो इसके प्रत्येक व्यक्तिगत जीव जन्म (जन्मान्तर) पहिले ही विश्व में विद्यमान थे और यह दैहिक शरीर या जीवन के अन्त में भी जीते रहेंगे। अर्थात् जितने जीव अभी इस काल में हैं वे अनादिकाल से अनन्तकाल तक रहेंगे। हम नहीं कह सकते कि ये कब हुए थे और कब नाश हो जायंगे। जीवन के पूर्व यह अपना जीवन नहीं था त्यों ही अन्त में भी जीवन नहीं होगा क्योंकि कोई ऐसा जीवन नहीं कि जिसके पहिले जीवन नहीं हुआ है न कोई ऐसा है कि जिसके अन्त में जीवन नहीं हो। अस्तु कोई जीवन ऐसा नहीं है कि जिसके पश्चात् जन्म मरण न हो अस्तु, यह सिद्ध हुआ कि आत्मा अनादि तथा अनन्त है।

देह मुक्त हुए उपरान्त जीवन।

शरीर रहित आकृति में अन्तिम जीवन भी होता है। इस स्थिति के पीछे पहिले की भांति मनुष्य को जन्म मरण ऐसा नहीं होता। भूतकाल के विषय में यह विचार होता है कि ऐसा कोई समय नहीं था जब कि यह आत्मा

शरीर रहित आकृति में रहा हो। साथ ही यह भी निर्णय नहीं है कि शारीरिक जीवन इस पृथ्वी पर ही रहा हो। जीवन की ऐसी स्थितियें हैं कि यदि पृथ्वी पर के जीवों से विशेष सूक्ष्मतरजात के शरीर होते हैं तो उनको साधारण बोली में देव शरीर कहते हैं और इस श्रेणी में के जीव शुभ तथा अशुभ दोनों प्रकार के होते हैं (अर्थात् देव और दैत्य दोनों होते है) तथा अन्य भाषा में स्वर्ग निवासी और नर्क वासी होते हैं।

चार प्रकार के जीव।

जैनी मानते हैं कि जीव ४ प्रकार के ही होते हैं अर्थात् मनुष्य, तिर्यञ्च, नारक (दैत्य) और देव (देवता) तिर्यञ्च में केवल, वनस्पति ही नहीं परन्तु मनुष्य योनि के अतिरिक्त अन्य सब योनियें यथा पक्षी, मछली, पशु इत्यादि सब का समावेश होता है।

जीव के शरीरों की जाति।

जीते प्राणी के शरीर को मनुष्य के अथवा पशु के रूप को हम जानते हैं परन्तु स्वर्ग अथवा नर्क में प्राणी के शरीर अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं। ऐसा विचार में आता है और स्वर्ग में दुःख से सुख की मात्रा बहुत अधिक है परन्तु नर्क में तो दुःख ही दुःख है सुख नाम को भी नहीं।

जैनोपदेश।

मेरे विचार में जैनियों के यहां एक से दूसरा विशेष उच्च करते करते १६ स्वर्ग (श्वेताम्बरों के १२ तथा दिगम्बरों के १६) और एक से दूसरा अधिक नीचा करते करते ७ प्रकार के नर्क का उपदेश दिया गया है। तथापि जीवन की इन चारों स्थितियों में जीव शरीर की शक्ति शुद्ध आत्मा नहीं है। उसका कोई न कोई प्रकार का जड़ शरीर होता ही है। स्थूल या सूक्ष्म।

पञ्चमी स्थिति।

परन्तु इन चारों जीवन की स्थितियों के पश्चात् एक अन्तिम पांचवीं विशुद्धतम शरीर रहित स्थिति है जो यदि एकवार प्राप्त होगई तो सदा बनी ही रहती है इन चारों में से प्रत्येक रूप की अवधि मर्यादित है अर्थात् आयु नियमित है कि जिसका अन्त कभी न कभी आता ही है यद्यपि यह काल स्वर्ग नर्क में तो विशेष होता है तथापि अन्त तो है ही परन्तु उस विशुद्ध शरीर रहित स्थिति में जीवन की लम्बाई अमर्यादित है कि जिसका अन्त कभी नहीं आता और यह स्थिति तब ही प्राप्त होती है जब हमारी विकाश पाने की स्थिति पूर्ण दशा पर पहुंचती है और यह दशा ही जीवन का

लक्ष्य (अर्थात् Goal है) और प्रत्येक व्यक्ति को यह प्राप्त हो सकती है और क्रम २ से विकाश पाते २ वहां तक पहुंचती है। इस अन्तिम स्थिति के प्राप्त होने के लिये यदि कोई जीवन उपयोगी है तो वह मनुष्य जीवन है।

चार दुर्लभता।

मुझे यहां याद आता है कि चार बातें दुर्लभ हैं (१) मनुष्य जीवन प्राप्त होना (दुर्लभ हैं) (२) मनुष्य जीवन प्राप्त होने पर सत्य उपदेश प्राप्त होना (३) सत्य उपदेश मिलने पर उस पर श्रद्धा होना और (४) श्रद्धा होने पर उस पर मनन करके उसके अनुसार चलना यह चारों बातें दुर्लभ हैं।

जिस स्थिति में हमने जन्म लिया है वह कोई अकस्मात् हमको नहीं मिली है। पूर्व जन्म में जैसी करणी करी हो वैसा ही पाश्चात्य जीवन प्राप्त होता है। अलबत्ता उपदेश ऐसा है कि जितने ही हम भले या बुरे होते हैं उतना ही हमको सुख या दुःख मिलता है। ईसाई लोग भी यही मानते हैं तथापि जहां वे लोग यह मानते हैं कि नारकी जीवन सदैव नित्य रहता है वहां जैनी यह मानते हैं कि नर्क के जीवन का भी कभी न कभी अन्त आजाता है।

यह उपदेश कहां से लिया गया है।

जिस भांति ईसाई (ख्रीष्टीय) ईसा के अनुगामी हैं उसी भांति जैनी महावीर जिनेश्वर के माननेवाले हैं। महावीर जिन ईसा के पूर्व छठवीं शताब्दी में उत्पन्न हुए थे उनका जन्म भारत में हुआ था और अपनी आयु के पिछले ३० वर्ष इन्होंने उपदेश देने में व्यतीत किये उनका जन्म के साथ २ ही अवधिज्ञान विश्व दर्शन तथा विश्व श्रवण आदि लब्धियें प्राप्त हुई थीं। तत्पश्चात् उनको वह परमज्ञान प्राप्त होगया जिससे दूसरे के हृदय का भाव जान सकते थे ४२ वर्ष की आयु होने पर तपश्चर्या तथा अपने ज्ञान विकाश होने से वे सर्वज्ञ होगये थे और जब तक आप सर्वज्ञ नहीं हुए थे तब तक उपदेश करना नहीं प्रारम्भ किया था (इस प्रकार अर्थात् जैनी एक सर्वज्ञ महात्मा के उपदेश को मानने वाले हैं तथा उनके ही अनुगामी हैं ऐसी परम्परा है) जिस भांति बाइबिल ख्रीष्ट के उपदेशों का संग्रह है उसी भांति जैनशास्त्र महावीर के उपदेशों का भण्डार है।

जिनदेव के लक्षण।

देव अर्थात् धर्मनियता के कैसे लक्षण होने चाहियें इस विषय में जैनियों का दृढ़ विश्वास है कि धर्म नेता (Religions

leader) सर्वज्ञ होना चाहिये अन्यथा वह लोगों के जीवन के लिये धर्मशास्त्र तथा नियम (Code of rules of) बनाने योग्य नहीं है यह बात भली भांति प्रगट है क्योंकि यदि सर्वज्ञ न हो तो कुछ ऐसा होगा जो कुछ कम जाने और जिस वार्ता को वह न जाने उसको करने या न करने को शिक्षा हमको दें तो सम्भव है कि हम लोग उसकी सीख कर उनसे अधिक रूप में उस कार्य को करने योग्य होजायें।

और उसको निद्रा भी न आनी चाहिये ताकि उसके ज्ञान की सर्वज्ञता में कोई भी प्रकार का Discontinuity विक्षेप हो यथा क्रोध, भय, लोभ आदि द्वारा और उसमें यह गुण भी होना चाहिये कि उस पर चाहे कुछ भी किया जाय परन्तु क्रोध न आवे। किन्तु सबको क्षमा करे विरोधी चाहे कितना ही दुष्ट क्यों न हो इसके उपरान्त अन्य लक्षण भी श्रीजिनेश्वर के बतलाये हैं मैंने इस निबन्ध के प्रारम्भ में कहा था कि सब उपदेशों का सार इस महावाक्य में है कि "अहिंसा परमोधर्मः" अर्थात् 'किसी को कष्ट नहीं देना' यही सब से बड़ा धर्म है।

—: समाप्तम् :—

संस्थापक संरक्षक मुख्य सहायक वं सहायकगण ।

श्रीयुत	गिरधारीलालजी सांखला बेंगलोर	संस्थापक
,,	धूलचन्दजी छजिड़ जैतारण ...	,,
,,	फूलचन्दजी कोठारी ब्यावर ...	मुख्य संरक्षक
,,	विजयराजजी मुता बेंगलोर ...	,,
,,	सिरेमलजी बहोरा, ब्यावर ...	,,
,,	पन्नालालजी गादया, ब्यावर ...	संरक्षक
	(परलोकवासी होगये)	
,,	घेवरचन्दजी गुलाबचन्दजी छलारसी, जैतारण	,,
,,	जमराजजी खविसरा, बेंगलोर ...	,,
,,	अचलदासजी लोडा घेवरचन्दजी पारख नोखरी	,,
,,	सिरेमलजी बांठ्या, ब्यावर ...	,,
,,	महावीरसिंहजी हांसी	मुख्य सहायक
,,	मिश्रीमलजी मुणोत, ब्यावर ...	,,
,,	मुन्शी केसरीमलजी रांका, ब्यावर ...	,,



श्रीजैनप्रथमपुस्तक

लेखक

स्वर्गीय मुन्शी नाथूरामजीलमेचू

करहल निवासी

स्वर्गीय लाला माडे मल्लात्मजा

श्री जैन मती देवी धर्म पत्नी स्वर्गीय

ला० दर्शनलाल रईस देहगा दूनकी

आर्थिक सहायता से

प्रकाशक

महबूब सिंह जैन सर्राफ़

द्वितिया वृत्ति १०००	देहली वी. नि. सं २४५२	मूल्य अभ्यास

इम्पीरियल प्रिंटिंग प्रेस देहली में छपी।

※ श्रीवीतरागायनमः ※

॥ श्रीजैनप्रथम पुस्तक ॥

। इष्ट वन्दना (दोहा) ।

प्रथम नमों जगदीशको सुमरत जिसका नाम ।
विघ्न कोटि क्षणमें टरें सिद्ध होंय सब काम ॥१॥
फिर शारद गुरुपद नमों जिन प्रसादलहि ज्ञान ।
निज न्यूनन कविताकरों सुभग सरस आसान ॥२॥
हेस्वामीकरुणानिधिनामी । त्रिभुवनईश्वरअन्तर्यामी ॥
धन्य२तुमअधमोद्धारक । जन्मजलधिसेपारउतारक३॥
जनपरकृपादृष्टिनिजकीजे । करोंप्रणामभक्तिनिजदीजे॥
हेतुमगुणअनन्तभगवन्तः । शेशगणेशनपावतअन्तः४॥
मोहमन्दबुद्धिकिमिगावें । सुरगुरुकहतपारनहिंपावें ।
यहनिश्चयआयाप्रभुआजा । तुमप्रसादसीजेंसबकाजा५॥
यासेबारबारशिरनाऊं । अविचलभक्तितुम्हारीपाऊं
नाथूरामदासउरअन्तर । बासकरोप्रभुआपनिरन्तर६॥

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

स्वर

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ
ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः

व्यञ्जन

क ख ग घ ङ

च छ ज झ ञ

ट ठ ड ढ ण

त थ द ध न

प फ ब भ म

य र ल व

श ष स ह

क्ष त्र ज्ञ

परीक्षा के अक्षर

मगनरह झपट चलकफबखत
अघआएऐश औषधअंसक्षत्र
यज्ञढवऊभऋणईदओजउठ
ङऌउथअः ॠलृङलॄड़ढ़

१ पाठ

दो अक्षर के सादे शब्द

अब कब जब नब सब ढब नन धन
मन जन घन पन कगा गगा भगा
रगा नगा कल खल गल चल छल
जल झल नल थल दल पल फल
नल बल मल हल भज तज कज
सज रज अत गत दत पत लत

भक्ष वर कर खर शर सर नर चर
शठ मठ हठ पट चट पट घट लट
भट ॥

२ पाठ

तीन अक्षर के सादे शब्द

अमल कमल अजर अमर अगम
अनट चपल मजल वयन वचन
नयन शयन गमन शमन पवन भवन
गगन गमन हलन चलन अटक
कटक खटक चटक लटक शटक
अनय अभय अघन मघन सघन
जघन चरम परम अचल सचल
चपल सफल अधर अक्षर अगर

नगर कनक जनक ॥

३ पाठ

चार अक्षर के सादे शब्द

अचरज अरहत सरवर अरजन
करवत अधपर झटपट भगवत
वनचर अटकल अपयश छलबल
जलधर जलचर थलचर नभचर
समरथ भवगद अधरम अजगर
जनपथ गजरथ भवपथ ॥

बारहखड़ी बारह अक्षरी

—	ा	ि	ी	ु	ू	े	ै	ो	ौ	ं	ः
क	का	कि	की	कु	कू	के	कै	को	कौ	कं	कः
ख	खा	खि	खी	खु	खू	खे	खै	खो	खौ	खं	खः
ग	गा	गि	गी	गु	गू	गे	गै	गो	गौ	गं	गः
घ	घा	घि	घी	घु	घू	घे	घै	घो	घौ	घं	घः
ङ	ङा	ङि	ङी	ङु	ङू	ङे	ङै	ङो	ङौ	ङं	ङः
च	चा	चि	ची	चु	चू	चे	चै	चो	चौ	चं	चः
छ	छा	छि	छी	छु	छू	छे	छै	छो	छौ	छं	छः

य	या	यि	यी	यु	यृ	ये	यै	यो	यौ	यं	यः
र	रा	रि	री	रु	रू	रे	रै	रो	रौ	रं	रः
ल	ला	लि	ली	लु	लृ	ले	लै	लो	लौ	लं	लः
व	वा	वि	वी	वु	वृ	वे	वै	वो	वौ	वं	वः
श	शा	शि	शी	शु	शृ	शे	शै	शो	शौ	शं	शः
ष	षा	षि	षी	षु	षृ	षे	षै	षो	षौ	षं	षः
स	सा	सि	सी	सु	सृ	से	सै	सो	सौ	सं	सः
ह	हा	हि	ही	हु	हृ	हे	है	हो	हौ	हं	हः
ळ	ळा	ळि	ळी	ळु	ळृ	ळे	ळै	ळो	ळौ	ळं	ळः

त्र त्रा त्रि त्री त्रु त्रू त्रे त्रै त्रो त्रौ त्रं त्रः

ज्ञ ज्ञा ज्ञि ज्ञी ज्ञु ज्ञू ज्ञे ज्ञै ज्ञो ज्ञौ ज्ञं ज्ञः

४ पाठ

मात्रा सहित दो अक्षर के शब्द

अम्बु अम्भो नीर पानी तोय चक्षु दृग
नेत्र आंख प्रभु पति स्वामी ईश राजा
इंद्र शत्रु रिपु अरि वैरी द्वेषी बोध
ज्ञान मति बुद्धि प्रज्ञा मुक्ति छुट्टी मुक्त
शिव सिद्ध छूटा खुला सूत्र वाक्य तत्व
सार निरा द्रव्य वस्तु पुत्र सुत सून
शिशु बेटा नंद मित्र हेती हानि घटी
त्रुटि टोटा लाभ वृद्धि बढ़ी कार्य काम
दाना दानी बन्धु भ्राता भाई वर्ग कक्ष
वृद्ध वूढ़ा बड़ा मणि रत्न ऋद्धि लक्ष्मी
सिद्धि प्राप्ति ऋषि मुनि यती तपी लेश्या

मन्सा इच्छा वांछा कांक्षा चिंता शोच हिंसा हत्या बध दान त्याग ॥

५ पाठ

तीन अक्षरके मात्रा सहित शब्द

आश्चर्य अचंभा विस्मय जिनेश जिनेंद्र अर्हंत तीर्थेश केवली सर्वज्ञ मुनीश मुनींद्र यतीश यतींद्र ऋषीश ऋषींद्र श्रद्धा विश्वास भरोसा मिथ्यात्व भूलना सम्यक्त सत्यता कल्याण भलाई बालक अज्ञान अजान अबोध पंकज नीरज अम्बुज अम्भोज तोयज वारिज प्रकृति स्वभाव विशेष अधिक हिंसक हत्यारा

बधिक घातक दुःखित पीड़ित बाधित खेदित क्लेशित आचार्य शित्तक कथन भाषण दयालु कृपालु भंजन नाशन खंडन भूषण गहना सरिता आपगा नदिया वासव सुरेश सुरेंद्र

॥ ६ पाठ ॥

❋ छोटे २ वाक्यों में शिक्षा। ❋

लिखी पुस्तक से छपी पुस्तक सहज में पढ़ी जाती है और आशय भी खुलाशा समझ पड़ता है। जो लोभी अपस्वार्थी पंडित मिथ्या अविनय का दोष लगाते हैं वे धूर्त ठग हैं। उससे पूछो कि विनय अविनय किसको कहते हैं ? यदि विनय नाम आदर से पढ़ने सुनने का है, और अविनय नाम निरादर से पढ़ने सुनने का है तो आदर पूर्वक पढ़ने सुननेसे

क्या अविनय हुई जो लोग शास्त्र की सभा में सोते हैं। नाना प्रकार की घरू चिन्ता में लगकर चाहते हैं कि कब शास्त्र पढ़ना बन्द करें। वे अविनयी हैं कि नहीं? यदि हैं तो उन्हें दंड क्यों नहीं देते? वा प्रेम से सुनने की प्रतिज्ञा क्यों नहीं कराते? हे भाइयो जैसे पयान समय कुत्ते का भौंकना वा कान फड़ फड़ाना अपशकुन समझा जाता है। और उस के शिर पर छड़ी मार कांइं २ शब्द करा देनेसे वह दोष मिटजाता है। तैसे ही इन ठगों को दो चार सुना देने से ये कुत्ते कान न हिलावेंगे। तुरन्तभौंकना बन्द कर देवें गे॥ यदि असल में शास्त्र छपे पढ़ने सुनने में अविनय होती वा पाप लगता तो सर्वज्ञ जो त्रिकाल ज्ञानी थे वा बहुश्रुती गणधर आचार्य अवश्य छापे का दोष लिखते। सो इन पंडितों से पूछो कि किसी शास्त्र में दिखा सकते हैं?

॥ पाठ ७ ॥

❋ छोटे २ वाक्यों में शिक्षा ❋

अरिहंत का भजन करो। धर्म की मूल दया है। दया मय धर्म्म पालो। धर्म ही मंगल करता है। धर्मात्माओं के पास बैठो। पापियों से दूर रहो। पाप को महाशत्रुजानो। संसार दुःखरूपहै। सर्व जीवोंपर क्षमा भाव राखो। किसी सेवैर न करो। बुद्धिमानों की शिक्षा मानो। किसी का बुरा न विचारो। विद्या पढ़ना अच्छा है। कृतघ्न न बनो। नम्रता से विद्या आतीहै। विपत में धैर्य धरो। घबरानेसे कार्य बिगड़ जाता है। आलस्य न करो। अधिक सोना बुराहै। आलस्य दरिद्र का पिता है। अधिक निद्रा दरिद्र की माता है इनसे दरिद्र उत्पन्न होताहै। पुस्तक यत्नसे रक्खो। पुस्तक का यह उपचार विनय है। पुस्तक ध्यानसे पढ़ना। उसका विषय न भूलना। यह पुस्तक की मुख्य विनय अर्थात आदर है।

॥ ८ पाठ ॥

❋ छोटे २ वाक्यों में शिक्षा ❋

सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार करो । जिस से कार्य सिद्ध होवे । ये पांच परम इष्ट हैं । अर्हंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय और सर्वसाधु इन्हीं के समुदाय को पंच परमेष्ठी कहते हैं सर्व वर्णों में प्रथम और श्रेष्ठ वर्ण क्षत्री हैं । क्षत्री और वैश्यों में से उत्तम आचार वाले ब्राह्मण माने गयेहैं शुद्धाचरण से ब्राह्मण वर्ण सर्वोत्तम है हीनाचारी ब्राह्मण पूज्य नहीं । वैश्य व्यापार व कृषि कर्त्ताओं को कहते हैं । शूद्र के अर्थ क्षुद्र अर्थात् नीचहै । नीच कर्म करने वाले सब शूद्र गिने जाते हैं वैश्य कुल की शोभा सत्य व्यवहार से है । मायाचारी का विश्वास न करो । जो तीर्थ के नामसे धन मांगतेहैं वे अधम धर्म ठग हैं । जो ऋण ले तीर्थ करते हैं फिर देते नहीं वे महा अधम हैं ॥

॥ ६ पाठ तीर्थंकर ॥

धर्म तीर्थ के प्रगट करने वालों को तीर्थंकर कहते हैं और मोहादि कर्म वैरीन को जीतने से जिन वा नाश करनेसे अर्हंत कहातेहैं जिन वा अर्हंत संज्ञा सामान्य

केवलीन को भीहै परन्तु जिनेंद्र जिनवर आदि संज्ञा पंच कल्याण (गर्भ जन्म तप ज्ञान निर्वाण) वाले तीर्थंकरो ही को है हाल के चौथे काल में ये २४ तीर्थंकर पंच कल्याणकेधारक हुये हैं ॥

ऋषभनाथ १ अजितनाथ २ संभवनाथ ३ अभिनन्दन नाथ ४ सुमतिनाथ ५ पद्मप्रभु ६ सुपार्श्वनाथ ७ चंद्रप्रभु८पुष्पदंत९शीतलनाथ१०श्रेयान्सनाथ ११ बासपूज्य १२ विमलनाथ १३ अनंतनाथ १४ धर्मनाथ १५ शांतिनाथ १६ कुंथुनाथ १७अरहनाथ१८ मल्लिनाथ १९ मुनिसुव्रत नाथ २० नमिनाथ २१ नेमनाथ २२ पारशनाथ २३ वर्द्धमान २४ ॥

॥ १० पाठ ॥

भूत भविष्य काल के २४ । २४

❋ तीर्थंकर ❋

श्री निर्वाण जी १ सागर जी २ महासाध जी ३

विमलप्रभुजी ४ श्रीधर जी ५ सुदत्त जी ६ अमल प्रभुजी ७ उद्धर जी ८ अंगिरजी ९ सन्मति जी १० सिन्धुनाथ जी ११ कुसुमांजलि जी १२ शिवगणजी १३ उत्साहजी १४ ज्ञानेश्वरजी १५ परमेश्वरजी १६ विमलेश्वरजी १७ यशोधरजी १८ कृष्णमतिजी १९ ज्ञानमतिजी २० शुद्धमतिजी २१ श्रीभद्रजी २२ अतिक्रान्तिजी २३ शान्तिजी २४ ये चौवीस तीर्थंकर भूतकाल में हुए हैं ! ! !

महापद्मजी १ सुरदेवजी २ सुपार्श्व जी ३ स्वयंप्रभुजी ४ सर्वात्मभूतजी ५ श्री देवजी ६ कुलपुत्रदेव जी ७ उदंक देवजी ८ प्रोष्टिल देवजी ९ जयकीर्ति जी १० मुनिसुव्रत जी ११ अरहजी १२ निष्पापजी १३ निष्कषायजी १४ विपुलजी १५ निर्मलजी १६ चित्रगुप्तजी १७ समाधिगुप्त जी १८ स्वयंभूजी १९ अनिवृत्तजी २० जयनाथजी २१ श्री विमलजी २२ देवपालजी २३ अनन्तवीर्य जी २४ ये चौवीस तीर्थंकर भविष्यत् काल में होवेंगे !!!

॥ ११ पाठ ॥

❀ अपसर्पिणीकाल के चक्रवर्ति ❀

जो छः खंड पृथ्वी का राज्य करते हैं वे चक्रवर्ति कहाते हैं अपसर्पिणी काल उसे कहते हैं जिसमें जीवों कि आयु काय घटती २ होती है चक्रवर्ति १२ ये हैं पहिला भरत १ दूसरा सगर २ तीसरा मघवान ३ चौथा सनत्कुमार ४ पांचवां शान्तिनाथ५ छठवांकुंथु नाथ ६ सातवां अरहनाथ७ आठवां सुभूमि८ नवमा महापद्म ९ दशवां हरिषेण १० ग्यारहवां जयसेन ११ बारहवां ब्रह्मदत्त १२ ये सब चक्रवर्ति क्षत्री कुल में हुये हैं और सबही १४रत्न (सेनापति १ भंडारी २ शिल्प ३ प्रोहित ४ स्त्री ५ गज ६ अश्व ७ ये चेतन्य रत्न और सुदर्शनचक्र १ कांकिणी २ चूडामणि ३ चर्म ४ छत्र ५ खड्ग६दंड ७ ये अचेतन्य हैं) और ९ निधें काल १महाकाल२ माणवक३पिंगल४ नैसर्य ५ पांड ६ तंदोय ७ शंख ८ नवमी नाना

रत्न इन सब के भोक्ता होते हैं ॥

॥ १२ पाठ ॥

❋ नरायण वलभद्र प्रतिनारायण ❋

वर्तमान अवसर्पिण्यी काल में ये नरायण वलभद्र और प्रतिनारायण हुए हैं। तिप्रष्ट १ द्विप्रष्ट २ स्वयंभू ३ पुरुषोतम ४ पुरुषसिंह ५ पुंडरीक ६ पुरुषदत्त ७ लच्मण ८ कृष्ण ९ ये नवनरायण हुए हैं। विजय १ अचल २ सुधर्म ३ सुप्रभु ४ सुदर्शन ५ नंदमित्र ६ नंदसेन ७ रामचंद्र ८ वलदाऊ ९ ये नव वलभद्र हुए हैं। और अश्वग्रीव १ तारक २ मेरुक ३ निशुंभ ४ मधुकैटभ ५ वलि ६ प्रहरण ७ रावण ८ जरासिंध ९ ये नव प्रतिनारायण हुए हैं। नारायण वलभद्र का पिता तो एकही होताहै परंतु माता पृथक २ होती है और प्रति नारायण को मार कर उस का साधा हुआ तीन खंड (१ आर्यखंड दो म्लेच्छ खंड) का राज्य आप करते हैं विजयार्द्ध के उत्तर

नहीं जाते हैं ॥

॥ १३ पाठ ॥

भविष्यकालके कुलकरचक्रवर्तीनारा-
❀ यण बलभद्र प्रतिनारायण ❀

कनक १ कनकप्रभा २ कनकराज ३ कनकध्वज ४ कनक पुंगव ५ नलिन ६ नलिनप्रभा७ नलिनराज८ नलिनध्वज९ नलिन पुंगव १० पद्म ११ पद्मप्रभा १२ पद्मराज १३ पद्मध्वज १४ पद्मपुंगव १५ महापद्म१६ ये सोलह कुलकर होवेंगे ॥

भरत १ मुक्तदन्त २ दीदन्त ३ गूढ़दन्त ४ षेश्री षेण ५ श्रीभूति ६ पद्म ७ महापद्म ८ चित्रवाहन९ श्रीकान्त १० विमल वाहन ११ अरिष्ट १२ये बारह चक्रवर्ति होवेंगे ॥

नन्दी १ नन्दमित्र २ नन्दषेण ३ नन्दीभूत ४ अचल ५ महाबल ६ अतिबल ७ त्रिपृष्ट ८ द्विपृष्ट९ ये नव नरायण होवेंगे ॥

चन्द्र १ महाचन्द्र २ चन्द्रधर ३ हरिचन्द्र ४ सिंह चन्द्र ५ वरचन्द्र ६ पूर्णचन्द्र ७ शुभचन्द्र ८ श्रीचन्द्र ९ ये नव बलभद्र होवेंगे॥

श्रीकंठ १ हरिकंठ २ नीलकंठ ३ अश्वकंठ ४ सुकंठ ५ शिखीकंठ ६ अश्वग्रीव ७ हयग्रीव ८ मयूरग्रीव ९ येनव प्रतिनारायण होवेंगे॥

॥ १४ पाठ ॥

अवसर्पिणी काल के कामदेव २४

बाहूबली १ अमिततेज २ श्रीधर ३ दशभद्र ४ प्रसेनजित ५ चंद्रवर्ण ६ अग्निमुक्ति ७ सनत्कुमार ८ (चक्रवर्ति) वत्सराज ९ कनकप्रभः १० सेघवर्ण ११ शांतिनाथ १२ (तीर्थंकर) कुंथुनाथ (तीर्थंकर) १३ अरहनाथ १४ (तीर्थंकर) विजयराज १५ श्रीचंद्र १६ राजानल १७ हनुमानजी १८ बलराजा १९ बसुदेव २० प्रद्युम्न २१ नागकुमार २२ श्रीपाल २३ जंबूस्वामी २४ ये कामदेव बलविद्या रूप में अत्यन्त श्रेष्ठ होते हैं

इनके रूपकोदेख करके सर्व स्त्री पुरुष मोहित होतेथे

॥ १५ पाठ ॥

अवसर्पीणयी काल के १४ कुलकर

ॐ नव नारद ग्यारह रुद्र ॐ

प्रति श्रुति १ सन्मति २ क्षेमंकर ३ क्षेमंधर ४ सीमंकर ५ सीमंधर ६ विमल वाहन ७ चक्षुष्मान८ यशस्वान् ९ अभिचंद्र १० चंद्राभ ११ मरुदेव १२ प्रसेनजित१३ नाभिराजा १४ ये १४कुलकर कुलकी रीतोंके प्रवर्तावक हुएहैं ॥ भीम १ महाभीम २रुद्र३ महरुद्र ४ काल ५ महाकाल ६ दुर्मुख ७ नर्कमुख ८ अधोमुख ९ ये नव नारद कलहप्रिय नव नारायणों के समयमें क्रमसे प्रथक प्रथक हुए हैं ॥ भीमावलि१ जितशत्रु २ रुद्र ३ विशाल ४ सुप्रतिष्ट ५ बल ६ पुंडरीक ७ अजितंधर ८ जितनाभि ९ पीठ१० सत्य वचन नय ११ये११ रुद्र रौद्र परणामी हुए हैं तप से भ्रष्ट हो काम सेवने में रत हुए हैं ॥

॥ १६ पाठ ॥

विदेह क्षेत्र के वर्त्तमान २० तीर्थंकर

जंबूद्वीप में ३२ विदेह एक मेरु संबंधी हैं तिनमें से चार में चार तीर्थंकर सीमंधर १ युगमंदिर २ बाहु३ सुबाहु४ विद्यमान हैं। और धातुकी खंड में दो मेरु संबंधी चौसठ विदेह हैं तिनमेंसे आठमें आठ तीर्थंकर सुजात १ स्वयंप्रभु २ ऋषभानन३ अनंतवीर्य४विशाल कीर्ति ५ सूरीप्रभु ६ वज्रधर७ चंद्रानन८विद्यमान हैं और आधे पुष्कर द्वीप में दो मेरु संबंधी चौसठ विदेह हैं तिन में से आठ मेंआठतीर्थंकर चंद्रबाहु१ श्री भुजंगम २ ईश्वर ३ नेमप्रभु ४ वीरसेन ५ महाभद्र६ देवयश ७ अजितवीर्य ८ ये विद्यमान हैं यह वहां के तीर्थंकरों के पदस्थ के नाम हैं आयु तो सबकी कोड़ि पूर्व और काय ५०० धनुष कही है ॥

॥ १७ पाठ ॥

❀ १४ गुणस्थान १४ मार्गना ❀

मिथ्यात्व १ सास्वादन २ मिश्र३ अव्रत सम्यक्त्व ४ देशव्रत ५ प्रमत्त ६ अप्रमत्त७ अपूर्वकरण८ अनिवृत्तिकरण९ सूक्ष्मलोभ १० उपशांत कषाय वा उपशांत मोह ११ क्षीण कषाय वा क्षीण मोह १२ सयोगकेवली १३ अयोग केवली १४ ये गुणस्थान हैं अर्थात मिथ्यात्व अवस्था से सर्वज्ञ सकल परमात्मा अवस्था तक गुणों की अपेक्षा ये संसार में आत्माके स्थान हैं ॥ चौदह मार्गना ❀ । गति १ इंद्री २ काय ३ योग ४ वेद ५ कषाय ६ ज्ञान ७ संयम ८ दर्शन ९ लेश्या १० भव्य ११ सम्यक्त १२ संज्ञी १३ आहारक १४ ॥

॥ १८ पाठ ॥

❀ अनुप्रेक्षा और परीषह ❀

अनित्य १ अशरण २ संसार ३ एकत्व४ अन्यत्व ५ अशुचि ६ आश्रव ७ संवर ८ निर्जरा९ लोक१०

बोध दुर्लभ ११ धर्म१२ये१२अनुप्रेक्षा वा भावना हैं इनके चितवन से वैराग्य उत्पन्न होता है इसमे ये वै

* गति—देवमनुष्य नर्क त्रियंच४ इंद्री५काय६योग १५ वेद ३ कषाय २५ ज्ञान५ । ३ संयम ७ दर्शन४ लेश्या ६ भव्य अभव्य २ सम्यक्त ६ सैनी असैनी२ आहारक, अनाहारक २ ॥

राग्य की माता हैं ॥ क्षुधा १ तृषा २ शीत ३ उष्ण ४ डंस मस्क ५ नग्न ६ अरति ७ स्त्री ८ चर्या ९ आशन १० शयन ११ दुर्वचन १२ वध बंधन १३ यांचना १४ अलाभ १५ रोग १६ तृणस्पर्श १७ मल १८ सत्कार पुरस्कार १९ प्रज्ञा २० अज्ञान२१ अदर्शन २२ ये बाईस परीषह हैं इनसे उपजे दुःखों को समभावों से सहना व्याकुल न होना सो परीषह जय अर्थात् परीषह का जीतना है ॥

॥ १९ पाठ ॥

* नर्क स्वर्ग अपवर्ग *

रत्नप्रभावा धम्मा १ सर्करा प्रभा वा वंशा २ वालुका प्रभा वा मेघा ३ पंक प्रभा वा अंजना ४ धूम प्रभवा अरिष्टा ५ तम प्रभा वा मघवी ६ महातमप्रभा वा माघवी७ये सात नर्क क्रमसे नीचे२ हैं अर्थात् पहिले से नीचे दूसरा इत्यादि ॥

सौधर्म १ ईशान २ सनत्कुमार ३ महेंद्र ४ ब्रह्म५ ब्रह्मोत्तर ६ लांतव ७ कापिष्ट८ शुक्र९ महाशुक्र१० सतार११ सहस्रार१२ आनत१३ प्राणत१४ आरण्य १५अच्युत १६इन १६ स्वर्गों को कल्प कहते हैं यहां इंद्रादि कल्पना है, इनके ऊपर अधः ग्रीवकके तीन विमान फिर मध्य ग्रीवक के तीन विमान फिर ऊर्ध्व ग्रीवक के तीन विमान एकत्र ग्रीवक के ९ताके ऊपर अनुदिशि वा अनोत्तरके ९विमान फिर तिनके ऊपर पंचोत्तरके ५विमान तिनके ऊपर सिद्ध सिलाहै २३ विमान कल्पातीत कहलाते हैं यहां सब अहमेंद्र हैं ॥

॥ २० पाठ ॥

भवन त्रिक देव जिन्हें असुर संज्ञा है

असुर कुमार १ नागकुमार २ सुपर्णकुमार ३ द्वीप-कुमार ४ उदधिकुमार ५ विद्युत्कुमार ६ मेघकुमार ७ दिक्कुमार ८ अग्निकुमार ९ पवनकुमार १० ये १० जातिके भवन वासीदेव हैं ॥

किंनर १ किम्पुरुष २ महोरग ३ गंधर्व ४ यक्ष ५ राक्षस ६ भूत७पिशाच८ ये ८ प्रकार के व्यन्तर देव हैंजो इन दिनों मूर्ख नर नारियों करबहु धापूजेजातेहैं

सूर्य १ चंद्रमा २ ग्रह ३ नक्षत्र ४ तारा ५ ये पांच प्रकार के ज्योतिषी देवहैं जिनके गमन अर्थात् घूमनेसे काल विभाग होताहै और जिनकी चालपर गणित करने से प्राणियों के दुःखसुख का बोध करते हैं ॥

॥ २१ पाठ ॥

२४तीर्थंकर के चिन्ह ५ पैंतल्ला

❀ ३ लखूरा ❀

ऋषभनाथ के बैलका चिन्ह १ अजितनाथ के हाथी का चिन्ह २ सम्भवनाथ के घोड़े का चिन्ह ३ अभिनन्दन नाथ के बन्दर का चिन्ह ४ सुमति नाथ के चकवे का चिन्ह ५ पद्म प्रभु के कमल कार चिन्ह ६ सुपार्श्वनाथ के सांथिये का चिन्ह ७ चन्द्रप्रभु के चन्द्रमा का चिन्ह ८ पुष्पदन्तके मगर का चिन्ह ९ शीतल नाथ के श्री वृक्षका चिन्ह १० श्रेयान्श नाथ के गैंड़ेका चिन्ह ११ बास पूज्यके भैंसे का चिन्ह १२ बिमल नाथ के शूकर का चिन्ह १३ अनन्त नाथ के सेई का चिन्ह १४ धर्मनाथ के वज्र (चक्र) का चिन्ह १५ शांतिनाथ के हरिण का चिन्ह १६ कुन्थुनाथ के बकरे का चिन्ह १७ अरह नाथके मच्छ का चिन्ह १८ मल्लि नाथ के कलश का चिन्ह १९ मुनिसुव्रत नाथ के कछुवा का चिन्ह २० नमिनाथ के कमलकी पाखुरीका चिन्ह २१ नेमी नाथ के शंख का चिन्ह २२ पारस नाथ के सर्प का चिन्ह २३ वर्द्धमान के सिंह का चिन्ह है ॥ २४ ॥ पहिले नर्क में प्रथम पाथड़े का सीमन्तक इन्द्रक बिल १ अढ़ाई

द्वीप अर्थात मनुष्य क्षेत्र २ सौधर्म स्वर्ग के प्रथम पटल का ऋजुविमान३ सिद्ध शिला ४ सिद्ध क्षेत्र ५ ये पांच पैंतालं अर्थात पैंतालीस २ लाख योजन के हैं ! ! ! सातवें नर्कका अप्रतिष्ठान इंद्रक बिल १ जंबू द्वीप २ सर्वार्थ सिद्ध विमान ये तीन लखूरा अर्थात् लाख २ योजन के हैं ! ! !

॥ ३२ पाठ ॥

तीर्थंकर के ४६ गुण में ३४ अतिशय

अतिसुरूप १ सुगंधितदेह २ पसेवनहो ३ मलमूत्र नहीं ४ प्रियहितवचन५ अतातुलबल ६ श्वेतरुधिर ७ १०८ देहमें लक्षण८ समचतुरसंस्थान९ वज्र ऋषभ नाराच्य संहनन१० ये जन्मत से१०अतिशय होवें । सौयोजन लंबे चौड़े क्षेत्र में काल न पड़े १आकाशमें गमन हो २ चारमुख दीखें३हिंसा उपसर्ग वैर नहो ४ कवलाहार नहीं ५ सर्व विद्यापन ६ ईश्वर पन ७

नख केश न बढ़ैं ८ पलक न लगें ९ छाया रहित देह १० ये दश अतिशय केवल ज्ञान भये होवें । अर्द्धमागधी भाषा १ जीवों में मित्रता २ निर्मलदिशा ३ निर्मलआकाश ४ सर्व ऋतु के फल फूल एक साथ फूलें फलें ५ पृथ्वी दर्पण समान ६ पांवतले देव कमल रचें ७ जय २ शब्द ८ मंद सुगंध पवन ९ गंधोदकवृष्टि १० निस्कंटक भूमि ११ हर्ष मई सृष्टि १२ धर्मचक्र आगे चले १३ अष्टमंगल द्रव्यें १४ ये चौदह देवकृत अतिशयं सब ३४ अतिशय हैं ॥

॥ २३ पाठ ॥

तीर्थंकर के ४६ गुण में ८ प्रतीहार्य

❀ ४ अनंत चतुष्टय ❀

अशोक वृक्ष १ सिंहासन २ तीन छत्र ३ भामंडल ४ दिव्य ध्वनी ५ पुंस्पवृष्टि ६ चौसठचमर ७ दुंदुभी बाजे ८ ये ८ प्रतीहार्यहैं । और अनंत दर्शन १ अनं

तज्ञान २ अनंत सुख ३ अनंतवीर्य ४ ये चार अनंत चतुष्टय ये सब एकत्र किये अर्हंत के व्यवहार में छयालीस गुण हुए निश्चय में अर्हंत देव अनंत गुण के धारक हैं ये सर्व तीर्थंकर क्षत्री कुल में उत्पन्न हुए हैं और अनागत (भविष्यत) कालके तीर्थंकरभी क्षत्री कुल में ही उपजेंगे इससे क्षत्रियों का वीर कुल सर्वोपरि पूज्यहै । जय बोलो अर्हंत भगवानकीजय॥

॥ २४ पाठ ॥

❋ आचार्य के ३६ गुण ❋

अनसन १ ऊनोदर वा आमोदर्य२ व्रतपरि संख्या ३ रस परित्याग ४ विव्यक्त शय्याशन ५ कायक्लेश ६ ये छय बाह्यतप जो प्रगट पने देखने में आते हैं ॥ प्रायश्चित १ विनय २ वैयावृत्य ३ स्वाधाय ४ व्युत्सर्ग ५ ध्यान ६ ये छह प्रकार अंतरंग तप सब१२ और उत्तम क्षमा १ उत्तम मार्दव २ उत्तम आर्यव ३

उत्तम सत्य ४ उत्तम शौच्य ५ उत्तम संयम ६ उत्तम तप ७ उत्तम त्याग ८ उत्तम आकिंचन ९ उत्तम ब्रह्मचर्य १० ये दश प्रकार के उत्तम धर्म हैं। दर्शनाचार १ ज्ञानाचार २ चारित्राचार ३ तपाचार ४ वीर्याचार ५ पांच प्रकार आचार॥ सामायक, समता भाव १ वंदनौ २ स्तवन ३ प्रतिक्रमण ४ स्वाधाय५ कायोत्सर्ग ६ ये छः आवश्यक क्रिया, और मनोगुप्ति १ वचन गुप्ति २ काय गुप्ति ३। १२ तप१० धर्म५ आचार ६ आवश्य ३ गुप्ति सब ३६ गुण हुए॥

॥ २५ पाठ ॥

❋ उपाध्याय के २५ गुण ❋

आचारांग १ सूत्र कृतांग २ स्थानांग ३ समवायांग ४ व्याख्या प्रज्ञप्ति ५ ज्ञात्रकथांग ६ उपासकाध्ययन ७ अन्तकृतांग ८ अनुत्तरन उत्पाद ९ प्रश्न व्याकरण १० विपाक सूत्रांग ११ ये ग्यारह अंग जिन वाणी के जाने, उत्पाद पूर्व १ अग्रायणी पूर्व

२ वीर्यवाद पूर्व ३ अस्तिनास्ति प्रवाद पूर्व ४ ज्ञान प्रवाद पूर्व ५ कर्मप्रवाद पूर्व ६ सत्यप्रवाद पूर्व ७ आत्म प्रवाद पूर्व ८ प्रत्याख्यानपूर्व९ विद्यानुवाद पूर्व १० कल्याण पूर्व ११ महन्त पूर्व १२प्राणवाद क्रिया पूर्व १३ लोकविंद पूर्व १४ ये चौदह पूर्व हैं इनको जाने, ऐसे ११ अंग १४ पूर्व को पढ़े पढ़ावें सो उपाध्याय हैं अंग नाम भाग वा हिस्से का है सो समस्त जिन वाणी के १२ अंगहैं तिन मेंसे ११ अंग जाने और बारह में अंग में से १४ पूर्व को जानेसो उपाध्याय हैं !!!

॥ २६ पाठ ॥

❋ साधुके २८ मूल गुण ❋

अहिंसा महाव्रत १ सत्य महाव्रत २ अचौर्य महाव्रत ३ ब्रह्मचर्य महाव्रत ४ परिग्रहत्याग महाव्रत ५ ये ५ महाव्रत ईर्यासमिती ६ भाषा समिति ७ ईषणा समिति ८ अदाननिक्षेपणा समिती ९ प्रतिस्थापना समि-

ति १० ये पंच समिति ॥ स्पर्शनेंद्री जीतना ११ रसनेंद्री जीतना १२ घ्राणेंद्री जीतना १३ चक्षुंद्री जीतना १४ श्रवणेंद्री जीतना १५ यह पंचेंद्रीय जीतना है सामायक १ वंदना २ स्तवन ३ प्रतिक्रमण ४ किसी आचार्यने स्वाध्याय किसी ने प्रत्याख्यान लिखा है॥ प्रत्याख्यान ५ कायोत्सर्ग ६ ये छः आवश्यक कार्य हैं यहांतक २१ गुण हुए, भूमिसयन २२ स्नान त्याग २३ केशलुंच २४ वस्त्र त्यागकी जगह परिग्रह त्याग लिखते तो अच्छाहोता वस्त्रत्याग २५ दंतधावेन त्याग २६ लघुभोजन २७ एकवार खड़े भोजन करना २८ ये एकत्र २८ मूल गुण साधुके हुए ॥

उत्तर गुण ८४००००० हैं सो आगे की बड़ी पुस्तक में लिखेंगे ॥

॥ २७ पाठ ॥

ॐ ध्यान और लेश्या ॐ

चित्त रोककर एक जगह लगाना वा आपही लग

जाना तिसका नाम ध्यानहै। सो अशुभकार्यमें स्वतः और शुभ व शुद्ध कार्य में प्रयत्न से लगता है ॥ इष्ट वियोग आर्तिध्यान १ अनिष्ट संयोग आर्तिध्यान २ पीड़ा चिंतवन आर्तिध्यान३ निदानबंध आर्तिध्यान४ यह चार प्रकार आर्तिध्यानहै॥ हिंसानंद रौद्रध्यान१ मृषानंद रौद्रध्यान २चौर्यानंद रौद्रध्यान३परिग्रहानंद रौद्रध्यान ४ ये चार भेद रौद्रध्यान के हैं ये दोनों ध्यान अशुभ नीच गति के कारण हैं ॥

आज्ञा विचय धर्मध्यान१अपाय विचय धर्मध्यान२ विपाक विचय धर्म ध्यान३संस्थान विचयधर्मध्यान४ ये चार भेद धर्म ध्यानके हैं यह शुभ ध्यानहै सुगति का कारण है ॥

प्रथम वितर्क विचार १ एकत्व वितर्क विचार२ सूक्ष्म क्रिया प्रतिपात ३ व्युपरित क्रिया निर्वर्तीनं४ये चार भेद शुक्लध्यान के हैं। यह ध्यान शुद्ध और मोक्षका कारण है ॥ लेश्या नाम लोभ की परणति का है कृष्ण १ नील२ कापोत३ये तीन अशुभ लेश्या हैं। पीत १ पद्म २ शुक्ल ३ ये तीन शुभ लेश्या हैं ॥

॥ २८ पाठ ॥

ॐ सोलह कारण भावना ॐ

निरातीचार सम्यग्दर्शन की शुद्धता दर्शन विशुद्ध१ विनय सम्पन्नता सम्यक्ती व्रतों का आदर२ शीव्रतेषु नतीचार:शुद्धशील व्रतपालना ३ अभीक्षणज्ञानोपयोग ज्ञान में उपयोग लगाना ४ संवेग संसार दुःख से डरना ५ शक्तिस्त्याग शक्तिसमान दान देना६शक्तिस्तप शक्त्यानुसार तपकरना ७ साधु समाधि मुन्यो का उपसर्ग मिटाना८वैयावृत्य मुन्यों की टहल करना ९ अर्हद्भक्ति अर्हंतकी भक्ति करनी १० आचार्य भक्ति आचार्य की भक्ति करनी ११ बहुश्रुत भक्ति विद्वानों की भक्ति करनी १२ प्रवचन भक्ति जिन वाणी की भक्ति करनी १३ आवश्यक धर्म कार्य समय पर करना १४ मोक्ष मार्ग का प्रभाव बढ़ाना १५ वात्सल्यत्व धर्मात्माओं से गोवत्स सम अटूट प्रीति रखना १६ ये १६ कारण भावना तीर्थंकर

गोत्र के बंध का कारण है !!!

॥ २६ पाठ ॥

ॐ श्रावक की ५३ क्रियां ॐ

बड़ १ पीपल २ पाकर ३ ऊमर ४ कठूमर ५ ये उदम्बर हैं मद्य १ मांस २ मधु ३ ये तीन मकारइन अष्ट मूल का त्याग अहिंसा अणुव्रत १ सत्याणुव्रत २ परस्त्री त्यागाणुव्रत ३ चोरी त्यागाणुव्रत ४ परिग्रह प्रमाणाणुव्रत ५ ये पंच अणुव्रत हैं दिग्व्रत ६ देशव्रत ७ अनर्थ दंड त्याग ८ ये तीन गुणव्रत सामायक ९ प्रोषधोपावस १० अतिथि संविभाग ११ भोगोपभोग परिमाण १२ ये चार शिक्षाव्रतहैं बारह व्रत, अनसन १ उनोदर्य २ व्रतपरिसंख्या ३ रस परित्याग ४ विव्यक्त शय्यासन ५ कायक्लेश ६ ये बाह्य तप हैं । प्रायश्चित १ विनय २ वैयाव्रत ३ स्वाध्याय ४ व्युत्सर्ग ५ ध्याय ६ ये अंतरंग तप हैं सव १२ तप, दर्शन १ व्रत २ सामायक ३ प्रोषधोपवास

४ सचित्त त्याग ५ दिन में मैथुन और रात्रिभोजन त्याग ६ ब्रह्मचर्य७ आरंभ त्याग ८ परिग्रहप्रमाण९ अनुमति त्याग १० उदंडाहार ११ ये ग्यारह प्रतिज्ञा हैं आहार १ औषधि २ शास्त्र ३ अभय ४ दान हैं सम्यग्दर्शन १ सम्यग्ज्ञान २ सम्यक् चारित्र ३ ये रत्न त्रय त्रिकाल सामायक १ जलगालन २ अंथऊ ३ ये सर्व त्रेपण क्रियां अणुव्रती श्रावक की हैं ॥

॥ ३० पाठ ॥

दान के विषय में नवधाभक्ति

पात्र को देख बुलाना १ उच्चासन पर बैठालना२ चरण धोना ३ चरणोदक मस्तक पर रखना४ पूजा करना ५ मन शुद्ध रखना६वचन विनय रूप बोलना ७ शरीर शुद्ध रखना ८ अहार शुद्ध देना९यह नवधाभक्ति है सो दातार करे ॥

दाता के ७ गुण

१ श्रद्धावान होना २ शक्तिवान होना ३ अलोभी होना ४ दयावान होना ५ भक्तिवान होना ६ क्षमावान होना ७ विवेकवानहोना, दाता में ये ७ गुण होवें ॥ विलम्बसे देना १ विमुख होकर देना २ दुर्बचन कहकर देना ३ निरादर करके देना ४ देकर पछताना ५ ये दानके ५ दूषण हैं अर्थात् दानी को दूषित करते हैं आनंद पूर्वक देना १ आदर पूर्वक देना २ प्रिय बचन कह देना ३ निर्मलभाव रखना ४ जन्मसुफल मानना ५ ये दानके ५ भूषण हैं ॥ अर्थात् इनसे दान दानी शोभा पाते हैं ! ! ! आहार दान १ औषधि दान २ शास्त्रदान ३ अभयदान ४ ये चारप्रकार दानकेव्यव-हार मेंहैं निश्चय दान राग द्वेषपर भावों का त्याग ॥

॥ ३१ पाठ ॥

❀ सुपात्र कुपात्र अपात्र भेद ❀

तीर्थंकर मुनिपद में उत्तम २ सुपात्र हैं । १ ऋद्धि धारीव भावलिंगीजिन कल्पोमुनी उत्तम मध्यमसुपात्र

हैं२साधारण शेष सर्व मुनिउत्तम यघन्य सुपात्र हैं३। ऐलक चुल्लक गृहत्यागी श्रावक मध्यम उत्तमसुपात्र* हैं। ४ ब्रह्मचर्य प्रतिमासे अनुमति त्याग तक नैष्ठक श्रावक मध्यम २ सुपात्र हैं। ५ छठवीं प्रतिमा तकके पाक्षक श्रावक यध्यम यघन्य सुपात्रहैं। ६। क्षायक-सम्यग्दृष्टी अव्रती यघन्य उत्तम सुपात्रहैं।७। क्षयोप-शम सम्यग्दृष्टी यघन्यमध्यम। सुपात्र हैं। ८। उपशम ससम्यग्दृष्टी यघन्य २ सुपात्र हैं।९।मिथ्यादृष्टी अन्य लिंगी व्रती परमहंस उत्तमकुपात्र हैं १०। मिथ्यादृष्टी कुतपी मध्यमकुपात्र हैं। ११साधारण पूजापाठ कर्त्ता ब्राह्मण वैरागी यघन्य कुपात्रहैं।१२।बहुरूपिया आदि भेषी भिक्षुक उत्तम अपात्र हैं।१३। हिजड़े भाट फकीर भिक्षुकमध्यम अपात्रहैं।१४। मुड़चीरामुतरंसाईअघोरी आदि यघन्यअपात्रहैं। १५। ये १५ भेदपात्रों के हैं। औरदीन दरिद्री अपाहिजरोगी बालक वृद्धादि अस-मर्थ इनको करुणासंवेदना तहां सुपात्र कुपात्र कुछ भेद

* अर्जिका भी क्षुल्लकके समानमध्यम उत्तम सुपात्रहैं

न देखना सम्यक्त्ववान सुपात्र मिथ्या दृष्टी व्रती कुपात्र मिथ्या दृष्टी हिन्सक अपात्र जानो ! ! !

॥ ३२ पाठ ॥

❋ पंच भावों की परिभाषा ❋

आत्माके गुण घातक प्रतिपत्ती घातिया कर्मों के उदयका अभाव होते जो आत्मा विर्षेगुण प्रगट होना सो उपशमिक भाव हैं ॥ १ ॥ आत्माके गुण घातक प्रतिपत्ती घातियाकर्मों का त्तय होते जो आत्मा के विर्षेगुण प्रगट होना सो त्तायक भावहैं ॥२॥ आत्मा के गुण घातक प्रतिपत्ती घातिया कर्मो के त्तयोप शमसे आत्माके विषें जो एकोदेश गुण प्रगट होना अर्थात् सर्व घाती स्पर्द्धकों के उदयका अभाव और ऊपर सत्ता में तिष्टनों का उपशान्त करणहोय जिन की उदीर्णा होय उदय में न आवें और गुणके प्रति पत्ती देशघाती स्पर्द्धकों का उदय होय ऐसा होते जो आत्मा विषें गुण प्रगट होवें सो त्तयोपशमिक भाव

हैं ॥ ३ ॥ कर्मोका उदयही है कारण जिनैको तिन कर उपजे जो आत्माकेविषेंभावसो उदयीकभावहैं४॥

जहां कर्मों की कोईभी सापेक्षाकर नहीं ऐसे स्वकीय अन्वय परम भाव अनादि अनन्त आत्माका स्वरूप सो पारिणामिक भाव हैं ॥ ५ ॥

घातिया कर्मोंकी ४७ प्रकृति में से केवल ज्ञानावरणी १ केवल दर्शनावरणी १ निद्रा ५ मिथ्यात्व १ मिश्रमिथ्यात्व १ और अनन्तानु""न्धी अप्रत्याख्यानावरणी प्रत्याख्यानो वरणी येताने चौकड़ीके १२ऐसे सर्व २१ प्रकृति सर्व घातिया हैं ! ! ! और मतिज्ञानावरणी श्रुतज्ञानावरणी अवधिज्ञानावरणी मनपर्ययज्ञानावरणी ये ४ प्रकृति ज्ञानावरण की। चक्षुदर्शनावरणी अचक्षुदर्शनावरणी अवधिदर्शनावरणी ये ३ प्रकृतिदर्शनावरणकी ५ प्रकृति अन्तरायकी और सम्यक्त्व प्रकृति मिथ्यात्व १ जंज्वलन चौकड़ी४की और हास्यादि नो कषायकी ९ एंमे सर्व २६ प्रकृति देश घातिया हैं ! ! !

॥ ३३ पाठ ॥

❋ त्रेपन भाव ❋

उपशम सम्यक्त्व १ उपशम चारित्र २ ये दो उपशमिक भाव हैं। त्तायकज्ञान १ त्तायक दर्शन२त्तायक दान ३ त्तायक लाभ ४ त्तायक भोग५ त्तायक उपभोग ६ त्तायक वीर्य ७ त्तायक सम्यक्त्व ८ त्तायक चारित्र ९ ये नव भाव त्तायक के हैं। त्तयोपशम मतिज्ञान १ श्रुतज्ञान २ अवधिज्ञान ३ मन पर्ययज्ञान ४ कुमतिज्ञान ५ कुश्रुतज्ञान ६ कुअवधिज्ञान ७ चत्तु दर्शन ८ अचत्तुदर्शन ९ अवधिदर्शन १० त्तयोपशमिक दान ११ लाभ १२ भोग १३ उपभोग १४ वीर्य १५ सम्यक्त्व १६ चारित्र१७ संयमासंयम १८ ये १८ त्तयोपशमिक भाव हैं। देवगति १मनुष्यगति २ नर्क गति ३ तिर्यंचगति ४। क्रोध कषाय १ मान कषाय २ माया कषाय ३ लोभ कषाय ४ सब ८। पुंलिंग १ स्त्रीलिंग २ नपुंसकलिंग ३ सब ११। अद-

र्शन १२ अज्ञान १३ असंयम १४ असिद्धत्व १५ कृष्णलेश्या १६ नीललेश्या १७ कापोत लेश्या १८ पीता लेश्या १९ पद्म लेश्या २० शुक्ल लेश्या २१ ये उदयीक भाव। जीवत्व १ भव्यत्व २ अभव्यत्व ३ ये पारिणामक भाव एकत्र २+९+१८+२१+३= ५३ भाव सब हैं॥

॥ ३४ पाठ ॥

❃ शील के १८००० भेद ❃

प्रथम चेतन्य स्त्री के १७२८० भेद ये हैं देवी मनुष्यनी तिर्यंचिनी ३ ये तिनको मनसे वचनसे कायसे इन तीनप्रकार कर भोग। कृत आप करे कारितदूसरे से करवावे अनुमोदना करनेवालों की प्रशंसाकरना ३ ये। फिर पांच इंद्रीत्वचाजीभ नाक आंखेंकान और आहार भय मैथुन परिग्रह ये ४ संज्ञा। इन के द्वारा भोगे। द्रवित भावित दोये। और चारों चौकड़ी के१६कषाय इनकेवश भोगकरे ३×३×३×५×

×४×२×१६=१७२८० ये चेतन्य स्त्रीके हुए॥ और अचेतन्य स्त्री के चित्र काष्ठ पाषाण ३ ये। मन सेवचनसेदो। ये इंद्री५ संज्ञा४ दर्वित भावित२कृतिकारित अनुमोदना ३ ऐसब ३×२×५×४×२×३= ७२०७२०+१७२८०=१८०००इतनेप्रकारसेकुशील सेवनकहा जिसका त्यागसोशीलहैअर्थात् इनप्रकारोंसे भोगों का त्याग करना सो शील के १८००० भेद कहे हैं॥ यहां जो चित्र काष्ठ पाषाण ये तीन रूप स्त्रियों के कहे इन के बदले में चित्र मूर्ति और छाया स्त्री रखते तो ठीक होता क्योंकि काष्ठ पाषाण भेद किये सो ऐसेतो धातुमाटी रबरशकर कागज कपड़ा काच आदि कई प्रकारकी स्त्री बनतीहैं मूर्तिरूप जिस में सब ओरके सबअंग दिखाई देते हैं चित्र जिसमें एक ओरके अंग दिखाई देते हैं ऐसे असंख्य भेदहो सकते हैं। ऐसेही हास्य रति तीनों वेद पुरुष मैथुन हस्त मैथुन अनंग मैथुन आदि भेदभी कुशील में हैं शीलवान को सब छोड़ना चाहिये यह नियम ठीक नहीं कि १८००० भेदही हैं ये केवल उदाहरण मात्र

हैं वास्तव में जिन२मकारों से दोष लगता हो सब छोड़ना चाहिये ! ! !

॥ ३५ पाठ ॥

❋ देवोंके जातिभेद ❋

इंद्र—जैसे यहां राजा १

प्रतीन्द्र—जैसे यहां युवराज २

लोकपाल—जैसे यहां सेनापति तैसे सोम यम वरुण कुबेर ॥ ३ ॥

त्रायस्त्रिंशत्—जैसे यहां राजाके पुत्र तैसे इंद्रके पुत्र वत प्यारे ३३ देव होते हैं ॥ ४ ॥

सामान्यक—जैसे यहां राजाके बराबरी के कुटुम्ब वाले तैसेही छत्र सिंहासन विभूति रहित सब बातो में इन्द्र समान होते हैं ॥ ५ ॥

तनरक्षक—जैसे यहां राजाके अंग रक्षक सुभट तैसेही इंद्रके होते हैं ॥ ६ ॥

पारिषत्—जैसे यहां राजाके अमला तैसे भीतर

बाहर मध्य सभा में बैठने वाले सभासद इन्द्र के होते हैं ॥ ७ ॥

अनीक—सेनाके सवार प्यादे तुल्य इंद्रकी सेना के देव ॥ ८ ॥

प्रकीर्णक—जैसे यहां राजाके प्रजाजन तैसेही इंद्र के होते हैं ॥ ९ ॥

अभियोग—जैसेयहां राजाके टहलुआ तैसेही इंद्रके खिदमतगार होते हैं ॥ १० ॥

किल्विषक—जैसे यहांसफाई करनेवाले झाड़ूदार छिरकाव वाले तैसेही इंद्रके यहां होते हैं ॥ ११ ॥

ये ११ भेद कल्पवासी भवनवासीन में हैं और व्यन्तर ज्योतिषीन में लोकपाल त्रायस्त्रिंशत छोड़कर नवही भेद होतेहैं !!!

और ब्रह्मस्वर्ग के अन्त में लौकान्तक देव रहते हैं वे ब्रह्मचारी देव ऋषि हैं इनके देवी नहीं होती हैं !!! और तेवीस बिमानजो ग्रीवक अनुत्तर पंचोत्तर में हैं अहमेंद्र रहते हैं उन में न जातिभेद है न देवी हैं सर्व ब्रह्मचारी हैं ! ! !

दक्षिण स्थानों के सोलह इन्द्र हैं सर्व बत्तीस इंद्र हैं॥ उत्तर दक्षिण विभाग सबके सुमेरसेमाने हैं ज्योतिषी देवो में चन्द्रमा इंद्र और सूर्य प्रतीन्द्र ऐसे दो इंद्र हैं ॥ ये सर्व अट्ठानवे इंद्र देवों में और चक्रवर्त्यादि समय का राजा नरेन्द्र और तिर्यचों का राजा मृगेंद्र (सिंह) ऐसे सर्व सौ इंद्र भगवानके सेवक कहे हैं !!!

॥ ३७ पाठ ॥

❋ अकृत्रिम चैत्यालयोका व्यौरा ❋

अकृत्रिम=विना बनाये चैत्य=प्रतिमा

आलय=मन्दिर चैत्यालय=जिन मन्दिर

भवन वासीनके प्रत्येक भवनमें और कल्प वासीन के प्रत्येक विमान में एकेक जिन चैत्यालय हैं । जैसे असुर कुमारों के ६४ लाख भवन हैं नाग कुमारों के ८४ लाख भवन हैं सुपर्ण कुमारों के ७२ लाख भवन हैं द्वीपकुमारोंके ७६ लाख भवन हैं । उदधि कुमारों के ७६ लाख भवन हैं । विद्युत्कुमारों के ७६ लाख

बाहर मध्य सभा में बैठने वाले सभासद इन्द्र के होते हैं ॥ ७ ॥

अनीक—सेनाके सवार प्यादे तुल्य इंद्रकी सेना के देव ॥ ८ ॥

प्रकीर्णक—जैसे यहां राजाके प्रजाजन तैसेही इंद्र के होते हैं ॥ ९ ॥

अभियोग—जैसेयहां राजाके टहलुआ तैसेही इंद्रके खिदमतगार होते हैं ॥ १० ॥

किल्विषक—जैसे यहांसफाई करनेवाले झाड़ूदार छिरकाव वाले तैसेही इंद्रके यहां होते हैं ॥ ११ ॥

ये ११ भेद कल्पवासी भवनवासीन में हैं और व्यन्तर ज्योतिषीन में लोकपाल त्रायस्त्रिंशत छोड़कर नवही भेद होतेहैं !!!

और ब्रह्मस्वर्ग के अन्त में लौकान्तक देव रहते हैं वे ब्रह्मचारी देव ऋषि हैं इनके देवी नहीं होती हैं !!! और तेवीस विमानजो ग्रीवक अनुत्तर पंचोत्तर में हैं अहमेंद्र रहते हैं उन में न जातिभेद है न देवी हैं सर्व ब्रह्मचारी हैं ! ! !

दक्षिण स्थानों के सोलह इन्द्र हैं सर्व बत्तीस इंद्र हैं॥ उत्तर दक्षिण विभाग सबके सुमेरसेमानें हैं ज्योतिषी देवो में चन्द्रमा इंद्र और सूर्य प्रतीन्द्र ऐसे दो इंद्र हैं ॥ ये सर्व अट्ठानवे इंद्र देवों में और चक्रवर्त्यादि समय का राजा नरेन्द्र और तिर्यंचों का राजा मृगेंद्र (सिंह) ऐसे सर्व सौ इंद्र भगवानके सेवक कहे हैं !!!

॥ ३७ पाठ ॥

❋ अकृत्रिम चैत्यालयोका व्यौरा ❋

अकृत्रिम=विना बनाये चैत्य=प्रतिमा

आलय=मन्दिर चैत्यालय=जिन मन्दिर

भवन वासीनके प्रत्येक भवनमें और कल्प वासीन के प्रत्येक विमान में एकैक जिन चैत्यालय हैं । जैसे असुर कुमारों के ६४ लाख भवन हैं नाग कुमारों के ८४ लाग भवन हैं सुपर्ण कुमारों के ७२ लाख भवन हैं द्वीपकुमारोंके ७६ लाख भवन हैं । उदधि कुमारों के ७६ लाख भवन हैं । विद्युत्कुमारों के ७६ लाख

भवनहैं । मेघ कुमारोंके ७६ लाख भवनहै । दिक्कुमारों के ७६ लाख भवन हैं अग्निकुमारों के ७६ लाख भवन है । पवन कुमारों के ९६ लाख भवन है । समस्त भवन वासीनके सात करोड़ बहत्तर लाखभवन । सोही ७७२००००० चैत्यालय हैं ॥ और सौधर्म ईशान दो स्वर्गों में ६० लाख विमान है । सनत्कुमार माहेन्द्र दो स्वर्गों में २० लाख विमान है ॥ ब्रह्म ब्रह्मोत्तर दोस्वर्गों में ४ लाख विमान है लांतव कापिष्ट दो स्वर्गों मेंपचास हज़ात विमान है । शुक्र महाशुक्र दो स्वर्गों में चालीस हज़ार विमानहै । सतार सहस्त्रार दो स्वर्गों में ६ हज़ार विमानहैं आनत प्राणत दो स्वर्गों में चार सौ विमान हैं आरण्य अच्युत दो स्वर्गों में तीन सौ विमान हैं। अधः ग्रीवक में १११ विमान हैं । मध्य ग्रीवक में १०७ विमानहैं ऊर्ध्व ग्रीवक में ९१विमान हैं नव अनुत्तर में ९ विमान है पंचोत्तरमें पांच विमानहैं ऊर्ध्वलोकमेंसब चौरासी लाखसत्तान वे हज़ार तेवीस विमान और इतनेही चैत्यालय हैं ! ! ! और मध्यलोक में पंच मेरु पर८०

चैत्यालय हैं। वक्षार गिरियों पर ८० चैत्यालय हैं। विजयार्द्धों पर १७० चैत्यालय हैं। कुलाचलोंपर ३० चैत्यालय हैं। गज दन्तों पर २० चैत्यालय हैं। सा-ल्मली जम्बू वृक्षोंपर १० चैत्यालय हैं। नन्दीश्वर द्वीप में ५२ चैत्याल हैं। मानुष्योत्तर पर ४ चैत्या-लय हैं इक्ष्वाकारों पर ४ चैत्यालय हैं। कुंडल गिरी पर चार चैत्यालय हैं। रुचिकवर पर ४ चैत्यालय हैं ऐसे मध्यलोक में सर्व ४५८ चैत्यालय हैं और तीनों लोकमें आठ करोड़ छप्पन लाख सत्तानवे ह-ज़ार चारसौ इक्यासी चैत्यालय हैं औरव्यन्तरज्यो तिषीनके असख्याते चैत्यालयइससंख्यासे अलगहैं।

॥ ३८ पाठ ॥

❀ सामान्य पने सम्यक्त्वका वर्णन ❀

सम्यक्त्व नाम यथार्थपने भले प्रकार दृढ़ श्रद्धाण का है। सो अधः १ अपूर्व२अनिवृत्य ३ करण करैं मिथ्यात्व गांठिको भेदे तब सम्यक्त्व (सत्यश्रद्धाण)

प्रगट होवे। जीवद्रव्य१ पुद्गलद्रव्य२ धर्म द्रव्य३ अधर्म द्रव्य४ कालद्रव्य ५ आकाश द्रव्य ६ ये६ द्रव्ये और जीवास्तिकाय१ पुद्गलास्तिकाय२ धर्मास्तिकाय ३ अधर्मास्तिकाय ४ आकाशास्तिकाय ५ ये५ अस्तिकाय हैं जीवतत्त्व १ अजीवतत्त्व २ आश्रवतत्त्व ३ बंधतत्त्व ४ संवरतत्त्व५ निर्जरातत्त्व ६ मोक्षतत्त्व ७ये७ तत्त्वहैं॥ जीवपदार्थ १ अजीवपदार्थ २ आश्रवपदार्थ ३ बंधपदार्थ ४ संवरपदार्थ ५ निर्जरापदार्थ ६मोक्षपदार्थ७ पुण्य पदार्थ ८ पाप पदार्थ ९ ये ९ पदार्थ हैं॥ इन २७ भेदों को समझने से सम्यक्त्व शीघ्र होता है॥

परिभाषा-सत्य प्रतीत युक्त व्यवस्था धरे, सब से समताभावकर सत्यतकी इच्छारहै उसे सम्यक्त्वकहतेहैं सो निसर्गस्वतः, अधिगमज गुरु उपदेश से ऐसे दो प्रकार से होता है॥ सम्यक्त्व चारोंगतिमें संज्ञीपंचेंद्री के होता है॥

॥ ३९ पाठ ॥

❋ सम्यक्त्व के लिये पंच लब्धियां ❋

(१) क्षयोपशम लब्धि—जहां अप्रसस्त प्रकृतोंका (खोटी व पाप प्रकृतों का) अनुभाग (रस) क्रमसे अनंत २ गुणा घटे उसे क्षयोपशम लब्धि कहते हैं।

(२) विसुद्ध लब्धि—क्षयोपशम लब्धि होने पर शुभ धर्मानुराग रूप विशुद्ध भाव होवें सो विशुद्ध लब्धि है।

(३) देशना लब्धि—धर्मोपदेश देनेवाले आचार्य की वा अन्य धर्मात्मा उपदेशक की प्राप्ति होना वा अंतस में रुचि होना ऐसी लब्धि देशना कहाती है॥

(४) प्रायोग्यता लब्धि-ऊपर लिखी तीन लब्धियों केवलकर कर्मोंकी स्थिति, अनुभाग घटावे सक्रमणकरे निर्जरा करै सो प्रायोग्यता लब्धिहै॥

(५) करण लब्धि—बंधापशरण, गुण संक्रमण, गुण श्रेणी निर्जरा, और स्थिति खंडन करै

जिसे करण लब्धि कहते हैं॥ चार लब्धें इस संसार में जीवों को अनेक बार हुईं परन्तु करण लब्धि नहीं हुई करण लब्धि के होने ही सम्यक्त्व होता है॥

॥ ४० पाठ ॥

* सम्यक्त्व के २५ दूषण (दोष) *

श्रद्धाण में शंका १ विषय भोगों की वांछा २ धर्मात्माओंसे विचिकित्सा (घृणा) ३ मूढ़दृष्टि (अविचार) ४ पर का दोष लगाना ५ धर्म्म से शिथिल होना वा करना ६ धर्म व धर्मात्मा से द्वेष भाव ७ उत्साह रहित धर्म करना ८ ये सम्यक्त्व के ८ मल दोष हैं॥ इन दोषों के दूर होने से निश्शांकित १ निःकांक्षित २ निर्विचिकित्सा ३ अमूढ़ दृष्टि ४ उपगूहण ५ स्थितिकरण ६ प्रभाना ७ वात्सल्य ८ ये आठ गुण प्रगट होते हैं॥

जातिका मद १ कुलका मद २ रूपका मद ३ लाभ

का मद ४ बलकामद ५ विद्याकामद ६ तपकामद ७ ऐश्वर्य का मद ८ ये ८ मद दोष हैं॥

कुदेवका सेवन १ कुगुरुका सेवन २ कुधर्म्मका सेवन ३ कुदेव की प्रशंसा ४ कुगुरुकी प्रशंसा ५ कुधर्म की प्रशंसा ६ ये ६ अनायतन दोषहैं॥ देव मूढ़—जहां सुदेव कुदेवकी परीक्षा नहीं सबको देव मानना १ गुरु-मूढ़—जहां सुगुरु कुगुरु की परीक्षा नहीं सबही भेषीन को गुरु मानना २ धर्म मूढ़—जहां सुधर्म कुधर्म की परीक्षा नहीं सबही को धर्म मानना अर्थात् देखादेखी पूजनवंदनआचरणकरना ३॥ ये २५ सम्यक्त्वकेदूषणहैं

॥ ४१ पाठ ॥

सम्क्त्वके गुण (लक्षण) भूषण नाशन

संवेग भावना—संसार दुःख से डरना १ निर्वेद भावना काय कषाय का स्वरूप विचारना २ आत्म निंदा गर्हा ३ करुणा दान ४ सम्यक्त्वकी प्रशंसा ५ नवधा भक्ति ६ वैयावृत्य वात्सल्य ७ अनुकम्पा ८ ये

८ गुण हैं ॥ चित्त में प्रभावना १ हेय उपादेय का विचार २ धैर्य ३ हर्षित चित्त रहना ४ प्रवीणता५ ये ५ सम्यक्त्वके भूषणहैं ॥ इनसे सम्यक्त्व शोभापाता है॥ और ज्ञान का गर्व १ बुद्धि की हीनता २ कठोर खोटे बचन ३ रौद्र भाव ४ आलस्य ५ ये पांच सम्यक्त्व के नाशकहैं अर्थात् इनसे सम्यक्त्व नाशहो जाता है। सम्यक्त्व चारों गति में होता है।इतना विशेष है कि पंचेंद्री संज्ञी अर्थात् मन सहित वाले जीव के होता है ॥

॥ ४१ पाठ ॥

सम्यक्त्व के ५ अतिचार

❋ १३ काठिया चोर ❋

लोक हास्यका भयइससे सम्यक्त्व मेंदोष लगावे१ भोगों की अधिक रुचिसे सम्यक्त्व में दोष लगावे२ आगामी भोगोंकी वांछाकर सम्यक्त्वमें दोषलगावे३ मिथ्या आगमकी भक्तिकर सम्यक्त्व मे दोषलगावे३

मिथ्या दृष्टीकी सेवा करे सम्यक्त्व संतोष लगावे ५ ये पांच सम्यक्त्व के अतीचार हैं ॥

जुआ खेलना १ आलस्य करे धर्ममें शिथिल रहै२ शोक रुदन किया करे ३ सप्त भयमें भय भीत रहै४ कुकथा १ राजकथा २ चोरकथा३भोजनकथा ४ स्त्री कथा ५ कौतुक करेया देखें ६ क्रोध करना रहै७कप-टाना ८ अज्ञानता ९ भ्रम धोकासंन्देह १० निद्रा सोना११मद गर्व १२ मोह स्नेह १३ ये १३ काठिया अर्थात चोर लुटेरे हैं आत्मा का सम्यक् रत्नत्रय धन लूटते हैं इनसे सावधान रहना चाहिये ! ! !

॥ ४२ पाठ ॥

❋ मूल कर्म प्रकृति ८ ❋

(१) ज्ञानावरणी ५ प्रकार के ज्ञानको रोकतीहै जैसे किसी वस्तु पर वस्त्रका परदा करने से नहीं जानी जाती ॥

(२) दर्शनावरणी-प्रकृति ९ प्रकारहै यह पदार्थ

के देखने को रोकती है जैसे राजा के दर्शन को डाँढ़ीवान ॥

(३) मोहनी यह मदिरावत मोह को विस्तारती है आत्मा के स्वानुभाव को भुलाती है २८ प्रकार हैं ॥

(४) अन्तराय–यह भंडारी वत दान लाभादि में विघ्न (अन्तर) डालती है यह ५ प्रकार की है, इन चारों को घातिया कहते हैं आत्मा के गुण घाते हैं ॥

(५) आयु–यह बेड़ी समान है चारों गति में भ्रमाती है यह प्रकृति चार प्रकार की है ॥

(६) वेदनी यह प्रकृति दुःख सुखाभास रूप दो प्रकारकीहै । इसको मधुभरी छुरीसम जानो॥

(७) नाम यह प्रकृति चितेरावत है इसके९३ भेद हैं । जिनसे नानाप्रकार शरीर के रूप बनतेहैं

(८) गोत्र यह प्रकृति कुम्हार वत है नीच ऊच कुल में उपजानेवाली है ॥ इन चारों को अघातिया प्रकृति कहते हैं ॥

॥ ४४ पाठ ॥

ॐ मोहनी की उत्तर प्रकृतें २८ ॐ

मिथ्यात्व १ मिश्र मिथ्यात्व २ सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व३ये तीन प्रकृति दर्शन मोहनी की हैं श्रद्धाण विगाड़े हैं॥ अनंतानुबंधीक्रोध १ मान२माया३ लोभ४ अप्रत्याख्यानावरणी क्रोध १ मान २माया३ लोभ ४ प्रत्याख्यानावरणी क्रोध १ मान २माया ३ लोभ ४ संज्वलन क्रोध १ मान २ माया ३ लोभ ४ ये १६ प्रकृतें चार चौकड़ी कषायों की हैं। हास्य१ रति २ अरति ३ शोक ४ भय५जुगुप्सा ६ पुरुष वेद ७ स्त्री वेद ८ नपुंसक वेद ९ये नव प्रकृतें नो कषाय कहाती हैइन २५ प्रकृतिको कषाय वेदनी वा चारित्र मोहनी कहते हैं इन में दर्शन मोहनीकी तीनों प्रकृतों को मोह कहते हैं॥ चार प्रकार लोभ चार प्रकार माया हास्य रति और तीनों वेद इन्हीं १३ को राग कहतेहैं॥चार प्रकार क्रोध चार प्रकार मान, अरति,शोक, भय,जु-

ऐसा इन १२प्रकृतों को द्वेष कहते हैं । तीनों वेदोंको काम कहते हैं ॥

॥ ४५ पाठ ॥

ज्ञानावरण दर्शनावरण अंतराय की

❋ उत्तर प्रकृतें ❋

मतिज्ञानावरण १ श्रुत ज्ञानावरण २ अवधिज्ञानावरण ३ मनपर्यय ज्ञानावरण ४ केवल ज्ञानावरण५ ये पांच प्रकृति ज्ञानावरण की हैं ॥

चक्षु दर्शनावरण १ अचक्षुदर्शनावरण २ अवधि दर्शनावरण ३केवल दर्शनावरण ४ निद्रा५निद्रानिद्रा ६ प्रचला ७ प्रचला प्रचला ८ स्त्यानगृद्धि ९ येनव प्रकृतें दर्शनावरण की हैं ॥

दानान्तराय १ लाभान्तराय२ भोगान्तराय ३ उपभोगान्तराय ४ वीर्यान्तराय ५ येपांच प्रकृतें अंतराय की हैं । मोहनी कर्मको अरि कहते हैं, भाव कर्म भी

कहतेहैं, इसीसे अन्यकर्म उत्पन्नहोतेहैं, इससे यहबीर्य कर्म है ॥ ज्ञानावरण दर्शनावरण को रज कहते हैं,ये आत्माके देखने जानने को रोकतेहैं, इन्हेंद्रव्य कर्मभी कहते हैं । अंतराय को रहस कर्म कहते हैं और द्रव्य कर्म इसको भी कहते हैं ॥

॥ ४६ पाठ ॥

❋ नाम कर्म की ६३ उत्तर प्रकृतें ❋

देवगति १ मनुष्यगति २ नर्क गति ३ तिर्यंचगति४ ये चार गतिहैं ॥ एकेंद्री १ दोइंद्री २ तेइंद्री३चौइंद्री४ पंचेंद्री ५ ये ५ इंद्री प्रकृतिहैं, औदारिक१वैक्रियक २ आहारक ३ तैजस ४ कार्मान ५ ये५शरीर प्रकृतिहैं औदारिक उपांग १ वैक्रियक उपांग २ आहारक उपांग ३ ये ३ उपांग प्रकृति हैं ॥ औदारिक बंधन १ वैक्रियक बंधन २ आहारक बंधन ३ तैजस बंधन ४ कार्मान बंधन ५ ये ५ बंधन प्रकृति हैं ॥ औदारिक संघात १ वैक्रियक संघात २आहारक संघात३तैजस

संघात ४ कार्मान संघात ५ ये ५ संघात प्रकृतिहैं ॥ वज्र ऋृशभ नाराच्य संहनम १ वज्र नाराच्य संहनन २ नाराच्य संहनन ३ अर्द्ध नाराच्य संहनन ४ कीलक संहनन ५ स्फाटक संहनन ६ ये संहननप्रकृति हैं समचतुर संस्थान १ निग्रोधोपरि मंडल संस्थान २ सातिक संस्थाने ३ वावन संस्थान ४ कुब्ज संस्थान ५ हुंडक संस्थान ६ ये ६ संस्थान नाम प्रकृति हैं। कठोर १ कोमल २ उष्ण ३ शीत ४ हलका ५ गुरु ६ रूक्ष ७ स्निग्ध ८ ये ८ स्पर्श प्रकृतिहैं॥ खट्टा १ कटुक २ कषायल ३ मीठा ४ तिक्त ५ ये ५ रस नाम प्रकृतिहैं॥ सुगंध १ दुर्गंध २ ये दो प्रकार गंध नाम प्रकृति हैं। लाल १ श्याम २ श्वेत ३ पीत ४ हरित ५ ये ५ प्रकार वर्ण नाम प्रकृति हैं ॥

देवगत्यानुपूर्वी १ मनुष्य गत्यानुपूर्वी २ नर्क गत्यानु पूर्वी ३ तिर्यंच गत्यानु पूर्वी ४ ये ४ प्रकार गत्यानुपूर्वी प्रकृतिहैं॥ शुभचालि १ अशुभचालि २ ये दो प्रकार विहायो प्रकृति हैं॥ ये १४ पिंड प्रकृतिहैं ॥ तिनके ६५ भेदहै ॥

अगुरुलघु १ स्वासोश्वास २ अपघातक ३ परघातक ४ आताप ५ उद्योत ६ निर्माण ७ तीर्थंकर नाम ८ पर्याप्त ९ अपर्याप्त १० प्रत्येक ११ साधारण १२ त्रस १३ स्थावर १४ सूक्ष्म १५ बादर १६ सुस्वर १७ दुःस्वर १८ शुभ १९ अशुभ २० स्थिर २१ अस्थिर २२ आदेय २३ अनादेय २४ सौभाग्य २५ दुर्भाग्य २६ यश २७ अयश २८ ये २८ अपिंड प्रकृति हैं ऐसे ९३ नाम कर्म की प्रकृति हुई ॥ इस नाम कर्म को नो कर्म भी कहते हैं ॥

॥ ४७ पाठ ॥

✳ आयुगोत्र वेदनीकी उत्तरप्रकृति ✳

देवायु १ मनुष्यायु २ नर्कायु ३ तिर्यंचायु ४ आयुकर्म की ये चार प्रकृतें उत्तर प्रकृते हैं जितने काल तक जीव एक शरीर के आश्रय रहता है उस समय की मर्यादा का नाम आयु है ॥

ऊच गोत्र १ नीचगोत्र २ गोत्रकर्मकी ये दो उत्तर प्रकृति हैं देव सब और मनुष्य भोग भूमियां वआर्य

क्षेत्र के ब्राह्मण क्षत्री वैश्य ये ऊंच गोत्र कहाते हैं और सर्व नारकी व सर्व तिर्यंच और मनुष्यों में म्लेच्छ शूद्र पतित ये सब नीच गोत्र में हैं ॥

साता वेदनी १ असाता वेदनी२ येदो वेदनी कर्म की उत्तर प्रकृतें हैं सर्व १४८प्रकृतें हुई ॥ नाम की ९३ आयुकी ४ वेदनी की दो गोत्रकी दो सर्व१०१ प्रकृति अघातिया हैं ॥

॥ ४८ पाठ ॥

❋ पाप प्रकृतें १०० ❋

ज्ञानावरणी की ५ दर्शनावरण की ९मोहनीकी२८ अंतराय की ५ ऐसे ४७ घातियों की प्रकृतें और असाता वेदनी १ नीच गोत्र १नरकायु ऐसे सातकर्मों की ५० प्रकृति और नाम कर्म की ५०येनर्क गति१ तिर्यंच गति २ स्थावर ३ दो इंद्री४तेइंद्री५ चौइंद्री६ न्यग्रोधपरिमंडल ७ सातिक ८ कुब्ज ९ बावन १० हुंडक ११ वज्रनाराच्य १२ नाराच्य १३ अर्द्धनारा-

चय १४ कीलक १५ स्फाटक १६ अशुभवर्ण ५ अशुभरस ५ अशुभगंध२ अशुभस्पर्श८ अप्रसस्तिविहायोगति३७नर्कगत्यानुपूर्वी ३८ तिर्यंचगन्यानुपूर्वी ३९ अपघात ४० स्थावर ४१ सूक्ष्म ४२ अपर्याप्त ४३ दुःस्वर ४४ साधारण ४५ अशुभ ४६ अस्थिर ४७ दुर्भाग ४८ अनादेय ४९ अयशकीर्ति ५० सर्व१००ये सर्व पाप प्रकृतें कहीं ॥

॥ ४९ पाठ ॥

❋ पुण्य प्रकृति ६८ ❋

साता वेदनी १ ऊचगोत्र २ देवायु मनुष्यायु ३ तिर्यंचायु ४ ऐसे वेदनी की १ गोत्रकी १ आयुकी ३ सब ५ सो ये और ६३ नाम कर्म की वे ये हैं ॥

औदारिक बंधन१वैक्रियक बंधन२आहारकबंधन३ तैजस बंधन४ कार्मान बंधन५ औदारिक संघात ६ वैक्रियक संघात७आहारक संघात ८ तैजस संघात९ कार्मान संघात १० औदारिक शरीर ११ वैक्रियक-

शरीर १२ आहारक शरीर १३ तैजस शरीर १४ कार्मान शरीर १५ देवगति १६ मनुष्यगति १७ पंचेंद्री जाति १८ औदारिक आंगोपांग १९ वैक्रियक आंगोपांग २० आहारक आंगोपांग २१ समचतुर संस्थान २२ वज्र ऋषभ नाराच्य संहनन २३ प्रसस्त विहाय २४ देव गत्यानुपूर्वी २५ मनुष्य गत्यानुपूर्वी २६ अगुरुलघु २७ परघात २८ उश्वास २९ आताप ३० उद्योत ३१ तीर्थंकर ३२ निर्माण ३३ त्रस ३४ बादर ३५ पर्याप्त ३६ सुस्वर ३७ प्रत्येक ३८ शुभ ३९ स्थिर ४० शुभग ४१ आदेय ४२ यशः कीर्ति ४३ और शुभवर्ण ५ शुभरस ५ शुभगंध २ शुभ स्पर्श ८ सब६८ हुई॥

॥ ५० पाठ ॥

जीव विपाकी पुद्गल विपाकी भवविपाकी क्षेत्र विपाकी प्रकृतियां

सैंतालीस तो घातिया प्रकृति और अघातियोंमें से वेदनी की दो प्रकृति गोत्र कर्म की दो प्रकृति। और

नाम कर्म की ४ गति प्रकृति५ इंद्री प्रकृति दो विहायो प्रकृति और श्वासोश्वास प्रकृति१ तीर्थंकर प्रकृति १ त्रस प्रकृति १ स्थावर प्रकृति १ सूक्ष्म प्रकृति १ बादर प्रकृति १ पर्याप्त प्रकृति १ अपर्याप्त प्रकृति १ सुस्वर प्रकृति १ दुःस्वर प्रकृति १ सुभग प्रकृति१ दुर्भग प्रकृति १ आदेय प्रकृति १ अनादेय प्रकृति १ यश प्रकृति १ अपयश प्रकृति१ ये नाम कर्मकी सत्ताईस ऐसे सब ७८ प्रकृति जीव विपा की हैं। जिनके उदय जीव विषें अवस्थाहोय सो जीव विपाकीप्रकृति हैं॥ और पांच प्रकार बंधन पांच प्रकार संघातपांच प्रकार शरीर तीन प्रकार उपांग छह प्रकार संहनन छह प्रकार संस्थान औरशुभ अशुभ भेदकरवर्णगन्ध रस स्पर्श की चालीस अगुरु लघु एक अपघातक १ पर घातक १ आताप १ उद्योत १ निर्माण १ प्रत्येक १ साधारण१ स्थिर १ अस्थिर१ शुभ १अशुभ१ ये ८२ प्रकृति पुद्गल विपाकीहैं॥ जिनके उदयजीव सम्बधी पुद्गल ही परणवे सो पुद्गल विपाकी हैं॥

और चार प्रकार आयु प्रकृति भव विपाकी है चार प्रकार आनु पूर्वी क्षेत्र विपाकी प्रकृति है ॥ जिनका उदय भवमेंही होय सो भव विपाकी और जिनका उदय क्षेत्र में होय सो क्षेत्र विपाकी प्रकृति हैं ! ! !

॥ ५१ पाठ ॥

* चौरासी लाख योनि *

देव योनि चार लाख ४००००० नारकी योनीचार लाख४०००००मनुष्य योनिचौदहलाख१४००००० पृथ्वी काय योनि सातलाख ७००००० जल काय योनि सातलाख७००००० अग्नि काय योनि सात लाख७०००००पवनकाय योनिसातलाख७००००० नित्य निगोद साधारण वनस्पति काय योनि सात लाख७००००० इतर निगोद साधारण वनस्पतिकाय योनि सात लाख ७००००० प्रत्येक वनस्पति काय योनि दश लाख१००००००यह ५२०००००स्थावर योनि हुई दो इंद्री योनि दो लाख २००००० तेइंद्री

योनि दो लाख २००००० चौइंद्री योनि दो लाख २००००० विकलत्रय सब ६ लाख हुए पंचेंद्री तिर्यंच योनि चार लाख ४००००० ऐसे ६२ ००००० सर्व तिर्यंच योनि हुई और ८४००००० योनि सर्व हुई ॥

॥ ५२ पाठ ॥

❋ १९९½ लाख कुल कोड़ि ❋

पृथ्वी काय २२ लाख कोड़ि । जल काय ७ लाख कोड़ि अग्निकाय ३ लाख कोड़ि । पवनकाय ७लाख कोड़ि वनस्पति काय २८ लाख कोड़ि ये ६७ लाख कोड़ि स्थावर कहे । दो इंद्री ७ लाख कोड़ि । तेइंद्री ८ लाख कोड़ि चौइंद्री ९ लाख कोड़ि ये २४ लाख कोड़ि विकलत्रय हुए । साढ़े १२ लाखकोड़ि जलचर १२ लाख कोड़ि नभचर । १२ लाख कोड़ि स्थल चर । और ७ लाख कोड़ि श्री सर्प ये ४३½ लाख कोड़ि पंचेंद्री तिर्यंच हुए । औरएकसौ साढ़े३४लाख कोड़ि सर्व प्रकारके तिर्यंच हुए । नारकी पचीसलाख

कोड़ि । देव छब्बीस लाख कोड़िऔर मनुष्य चौदह लाख कोड़ि सर्व एकसौ साढ़े निन्यानवे लाखकोड़ि अर्थात् उन्नीस नील पंचानवे खर्व सर्व कुल कोड़िहुई

इति शुभम् जैन प्रथम पुस्तक समाप्तम् ॥

ह० मुन्शीनाथूरामलमेचू
बुकसेलर कटनी मुड़वारा
ज़िलअ. जबलपुर



जमीनकी



पैदावार

पौदा

बीज बोने के बाद क्या देखने में आता है ? पहले बीजमें अंखुआ निकलता है और वह धीरे धीरे बढ़ कर पौदा तैयार हो जाता है। कुछ पौदों से फूल फल मिलते हैं और अन्तमें वह सूख जाते हैं। अगर बीज मिट्टीमें न बोकर काठ या ईंटों पर फैला कर डाल दें और उसमें पानी देना शुरू करें तो उन बीजोंमे अंखुए निकलेंगे पर वह जैसा बढ़ना चाहिए वैसा नहीं बढ़ेंगे। फिर अगर बढ़ते हुए पौधे को मिट्टीसे उखाड़ लें तो वह जल्दही सूख जायगा। उसे बचानेकी चाहे जितनी फिकर की जाय वह नहीं बचता।

इसका कारण क्या है ? यह सरीहन दिखाई देता है कि पौदे और उस मिट्टीमें जिसमें वह लगता है कोई भीतरी सम्बन्ध है। हां, यही बात है। पौदे और मिट्टीका सदाका साथ है. मिट्टी पौदे को सिर्फ खड़ा रहनेको ताकत नहीं देता है बल्कि बढ़ने के लिये उसे जो कुछ गिजाको जरूरत होती है वह भी देती है। ठीक जीवकी तरह पौदा भी नहीं बच सकता अगर उसे उसके खानेकी चीज न मिले।

जमीन ।

एकही गांवमें कई तरहकी जमीन होती है। किसीमें पैदावार ज्यादा होती है किसीमें कम। पहली जमीनको किसान "जरखेज" या उपजाऊ" कहते हैं और दूसरीको "रेहड़ी" जमीन। लेकिन अगर "रेहड़ी" जमीनमें गोवर या खली खूब दी जाय तो उसकी भी उपज बढ़ सकती है। उसी तरह अच्छी जमीन भी कुछ दिनोंमें खराब हो जाती है अगर बिना गोवर और खली दिये हर साल उसमें फसल बोई जाय। हम लोग यह उलट फेर बहुत देखा करते हैं, लेकिन इसका कारण नहीं ढूंढ़ते। वह कारण क्या है?

पौदोंकी गिजा ।

इसका कारण यह है कि पौदा अपनी जरूरी गिजा मिट्टी से पाता है। पौदे बढ़ते हैं और मिट्टीमें जो उनके खानेकी चीजोंका खजाना है उसमें अपना आहार लेते हैं। अगर हर साल पौदे लगाते हो जाय तो उनकी गिजाकाखजाना कुछ दिनों में खाली हो जायगा और पौदे अन्तमें अपना अहार न पाकर नहीं बढ़ सकेंगे। गोवर औरखली ऐसी चीजें हैं जिनमें पौदोंकी गिजा है और हम इसे खेतमें डालकर पौदोंके खानेकी चीजों



का खज़ाना कुछ कुछ बढ़ाते जाते हैं। इस लिये खजना कभी खाली नहीं होता और हम लोग अच्छी फसल पाते हैं।

गोबर और खली

सब तरहकी फसलके लिये गोबर बहुत ही अच्छी खाद है और बहुत दिनोंकी जांचसे किसान यह अच्छी तरह जान चुके हैं कि इसके डालनेसे जमीन उपजाऊ होती है। जो हो जब किसान ऊख, तम्बाकू, सन, आलु, साग-सबजी वगैरहको

अच्छी फसल लेना चाहते हैं तो खेतमें खली डालते हैं, क्योंकि इसके डालनेसे फसल अच्छी मिलती है। ऊपर लिखे पौदे, धान गेहूं वगैरहके पौदोंके बनिसबत जमीनसे ज्यादा गिजा लेते हैं, इसलिये इनको खेतोमें ज्यादा खली डालनेकी जरूरत पड़ती है। गोवरमें पौदोंकी गिजा बहुत ही कम है, इसलिये अच्छी फसल पानेके लिये खेतमें बहुत ज्यादा गोवर डालने की जरूरत पड़ती है। दूसरी बात यह है, कि गांवोंमें कोयला या लकड़ी महंगी मिलती है इसलिये गोबरही जलाने के काममें आता है। इसका फल यह होता है कि बहुतसे खेतोंको पूरी खाद नहीं मिलती। जिन फसलोंमें लाभकी आशा रहती है उनमें खली डालनेके लिये कुछ रुपये खरचे जाते हैं। अगर किसानको गोवर या सस्ती खली खाद डालने के लिये पूरी तौरसे न मिले तो क्या ऐसा कोई उपाय भी है जिससे किसान अपनी फसलको पूरी गिजा पहुंचा सकते हैं ?

उपाय जरूर है। ऐसी भी बहुतसी चीजें हैं जिनमें कास्तकारीके अच्छे जानकारोंने पौदोंकी गिजा बहुत ज्यादा पायी है और यह चीजें सारे संसारमें गोबरकी जगह काममें लायी जा रही हैं। इन चीजोंमें सबसे अच्छी है ऐमोनिया खाद।



"एमोनिया खाद" क्या है ? यह एक खाद है जिसके डालनेसे जमीनमें पैदा करनेकी ताकत बहुत बढ़ जाती है। यह सभी फसलोंमें बड़े कामकी है और इसमें जितने गुण हैं उनके हिसाबसे इसका दाम कुछ नहीं है। इसमें ऐसी अशुद्ध कोई चीज नहीं है जिसके छूनेसे किसीका धर्म बिगड़े, इस लिये सभी इसे बेखटके छू सकते हैं। इसकी छोटी छोटी सूखी रोटियां होती हैं। इसके डालनेसे खलीसे बहुत कम खर्च में किसान अच्छी फसल पाते हैं।

"ऐमोनिया खाद" डालनेके कुछ कायदे

(१) सब फसलोंके लिये गोबर अच्छी खाद है और जितना मिल सके जमीनमें दिया जा सकता है। लेकिन यह कभी नहीं सोचना चाहिये कि बिना गोबर अच्छी फसल कभी नहीं पैदा हो सकती है।

(२) अगर गोबर न मिले तो घास, पत्ते की खाद भी डाली जा सकती है, यदि इन जगहोंमें इसका रिवाज हो। चाहे जो फसल बोई जा सकती है, लेकिन सन, मटर, ढैंचा, उरद वगैरहकी पैदावार घासकी खादसे दूसरी चीजोंकी फसलोंके बनिसबत अच्छी होती है।

(३) जमीनको अच्छी तरह जोतना चाहिये। अगर खेत अच्छी तरह जोता न जाय तो किसी भी खादसे फसल अच्छी नहीं उग सकती। जमीनको उपजाऊ बनाने के लिये दस्तूर के मुवाफिक या उस जगहके कृषिविभागके कर्मचारियोंकी रायसे और भी अच्छे उपायसे खेत जोतना चाहिये।

(४) इसमें लिखे नियमोंसे "ऐमोनिया खाद" काममें लानी चाहिये। इसमें कमी बेसी नहीं होनी चाहिये।

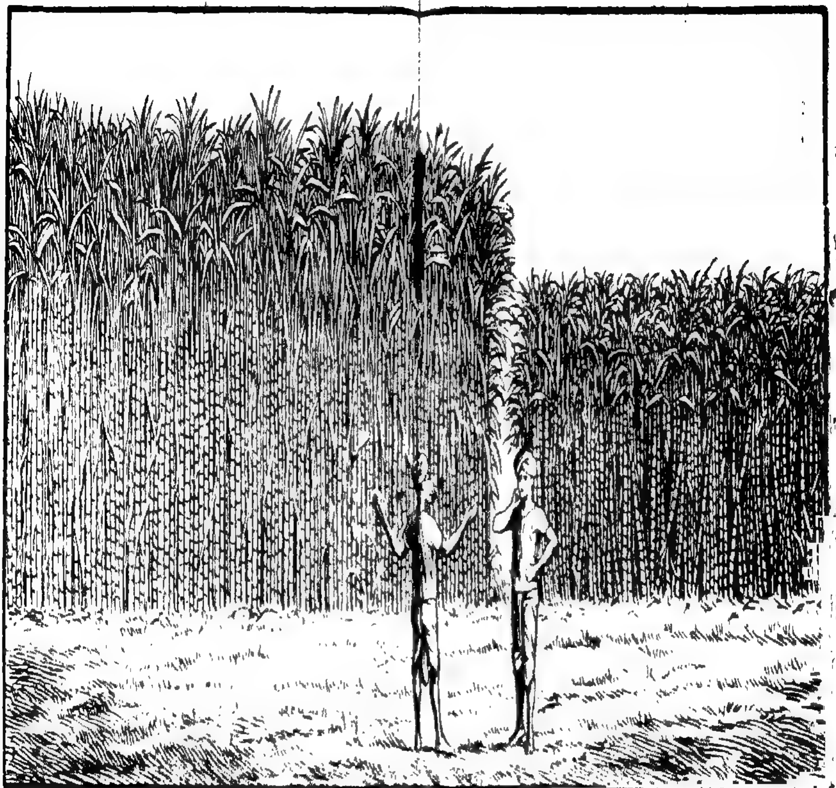
(५) यह सदा याद रखना चाहिये कि बहुत ज्यादा खाद देना भी उतना ही खराब है जितना बहुत कम देना।



बहुत खादसे भी फसल खराब हो जाती है। यह ठीक वैसी ही बात है जैसे कोई बहुत खाले तो उससे उसको नुकसान हो।

(६) "एमोनिया खाद" डालनेके साथ खेतमें बहुत पानी देनेकी जरूरत होती है मगर जल्दही पानी बरसनेका कोई मौका न हो।

(७) इस बात पर सदा ध्यान रखना जरूरी है कि "एमोनिया खाद" पौदोंमें न लग जाय। खेतमें यह खाद देनी



क्यों जनाब यह आपके गन्ने इतने अच्छे क्यों हैं।

ए जनाब मैंने इनमें सलफेट आफ ऐमोनिया की खाद दी है।



ने इतने अच्छे क्यों हैं।

गफ एमोनिया को खाद दी है।

चाहिये पर पौदोंसे कुछ दूर पर। राख या चूनामें "एमोनिया" कभी नहीं मिलाना चाहिये और न राख या चूना देनेके बाद तुरन्त इसे डालना चाहिये।

"एमोनिया खाद" के बोरे खरीदते समय तीन बातोंपर ध्यान रखना चाहिये :—(१) बोरोंपर मुहर लगी हो और वह टूटी न हो (२) बोरे कहींसे कटे फटे न हों।

खाद देने के नियम :—

(क) आउस या भदई धान :—एकड़ पीछे ५० पौण्डके हिसाबसे "ऐमोनिया खाद" डाली जाती है। पौदे जब ६ से १२ इंच तकके हो जायं तब "ऐमोनिया खाद" सब जगह बराबर डालनी चाहिये। अगर पानी बरसनेके पहिले डाली जाय तो अच्छा है। अगर "ऐमोनिया खाद" कम होनेके कारण सब जगह बराबर नहीं फैलाई जा सके तो जितनी "ऐमोनिया खाद" है उसकी दूनी साफ सूखी मिट्टी मिलाकर उसको सब जगह बराबर छींटना चाहिये। एक पाउण्ड आध सेर होता है।

(ख) आमन या अगहनी—धान रोपनेके लायक खेत जोतनेके समय एकड़ पीछे १०० पौण्ड "ऐमोनिया खाद" डालनी चाहिये।



सन—बोनेके पहिले या जब पौदे करीब ८ इञ्चके होजायं तब एकड़ पीछे ८० पौण्ड "ऐमोनिया खाद" डालनी चाहिये। पहिली बार डालनेके लगभग दो महीने बाद ६० पौण्डके हिसाबसे डालना चाहिये।

ऊख—"ऐमोनिया खाद" देकर उसको रेंड़ीकी खली, नीम या दूसरी खलीके साथ मिलाना चाहिये। ऊख बोनेके करीब पंद्रह दिन पहिले "ऐमोनिया खाद" सब जगह बराबर डालना चाहिये, लेकिन आखिरी जोताईके बाद नहीं। करीब

दो महीने बाद फिर ८० पौण्ड "ऐमोनिया खाद" लेकर उतनी ही रेंड़ीके चूर, नीम या दूसरी खलीके साथ मिलाना चाहिये पौदोंकी जड़के पास खोदकर इसे डालना चाहिये। दूसरी बार देनेके तीन चार महीने बाद फिर ८० पौण्ड उसी तरह खली के साथ मिलाकर आखिरी बार डालना चाहिये।

नोट—इसी तरह तीन बार ८०।८० पौण्ड लेकर ऐमोनिया खाद" डालना. मोटे ऊखके लिये १ एकड़में, मंझोले गन्नेके लिये १॥ एकड़में, और पतले गन्नेके लिये २ एकड़में काफी है।

आलू—दस गाड़ी अच्छी खूब सड़ी हुई कूड़ाकरकटकी खाद और कई बाल्टी लकड़ीकी राख देकर जमीनको अच्छी तरह जोतना चाहिये। आलू बोनेके लिये क्यारी बनानेके पहले १०० पौ०से १२० पौ०तक "ऐमोनिया" पिसी हुई उतनी ही खलीके साथ मिलाकर एक एकड़ जमीन पर सब जगह डालना चाहिये और मिट्टीमें खूब मिला देना चाहिये। लग-भग दो महीनेके बाद फिर १०० पौण्डसे १२० पौण्ड तक "ऐमोनिया" थोड़ी अच्छी सूखी मिट्टीके साथ मिलाकर एक एकड़ जमीनमें पौदोंकी जड़के पास डालना चाहिये। "ऐमो-निया खाद" डालनेके बाद खेतमें अच्छी तरह पानी देना चाहिये। प्याज, सकरकंद, अदरक, लहसन, ओल, कचू,



वगैरहमें ऊपर लिखे कायदेसे "एमोनिया खाद" डालना चाहिये।

तम्बाकू—खेत आखिरी जोताईके समय करीब दस गाड़ी कूड़ाकरकटकी खाद देनी चाहिये। इसके बाद तीन चार बार "एमोनिया खाद" देनी चाहिये। हरएक बार एकड़ पीछे ६० से ७० पौण्ड तक सिर्फ "एमोनिया खाद" या उसे अच्छी सूखी थोड़ी मिट्टीमें मिलाकर डालना चाहिये।

प्याज—की अच्छी पैदावारके लिये जमीनमें नाइट्रोजन

की ज्यादा जरूरत है, मगर सल्फट आफ ऐमोनिया की खाद नाइट्रोजनकी हालतमें ४ मन फी एकड़के हिसावसे डाली जाय तो ज्यादा फायदेमन्द होगी और तकलीफसे भी बचाव होगा जोती हुई जमीनमें पौदोंके लगाने से पहिले ऐमोनिया खाद डालाजा सकता है जमीनमें खाद डालने के बाद उस जमीनको अच्छी तरह सींचना चाहिये और इसी हालत में २ दिनके लिये छोड़ देना चाहिये बाद इसके पौदे लगाने से पहिले उसे अच्छी तरह जोतना और सींचना चाहिये।

गेहूं और तेलहन—बोनेके लिये जमीन तैयार करनेके वक्त एकड़ पीछे ६० पौण्ड "एमोनिया खाद" डालना चाहिये। अगर "एमोनिया" कम होनेके सबबसे सब जगह डालनेमें दिक्कत पड़े तो उसे उससे दुगुनी अच्छी सूखी मिट्टीके साथ मिला लेना चाहिये जिससे वह वजन में पहलेसे तिगुना हो जाय।

चारेके पौदे—ज्वार, मडुआ, मकई वगैरह जितनी फसलें हैं उनमें एकड़ पीछे २४० पौण्डके हिसावसे "एमोनिया" डालना चाहिये। जब पौधे ८ से १२ इंच तक बढ़ आयें तो खेतमें सब जगह बराबर "एमोनिया" छींट देना चाहिये।

"एमोनिया" डालनेके बाद ही अगर पानी न बरसे तो खेत में खूब पानी देना चाहिये।

सागसब्जी—गोभी, सलजम, मूली, बाकला वगैरहके खेत तैयार करते समय अंदाज दस गाड़ी कूड़ाकरकटकी खाद देनी चाहिये। इसके बाद एकड़ पीछे ३ से ५ मन तक "एमोनिया" आखिरमें देना चाहिये। इतना "एमोनिया" तीन बारमें डालना चाहिये। जब खेत पौदे लगानेके लिये तैयार हो जायं तब एक बार और उसके बाद दो दो महीने बाद एक एक बार।

फूलगोभी, बैंगन, विलायती बैंगन, कोंहड़ा, कद्दू वगैरह जिनके फल या फूल खाये जाते हैं उनको खेतोंमें एकड़ पीछे इसका आधा यानी डेढ़ से अढ़ाई मन तक "एमोनिया" देने से ही अच्छी फसल होती है।

फलोंके छोटे छोटे पेड़—पेड़की लम्बाई और घेरके हिसाब से एक एक पेड़में डेढ़से चार अउंस तक बरसमें दो बार ऐमोनिया डालना चाहिये। एक बार बरसात शुरू होनेके पहले या गरमीमें पहली बार पानी देनेके पहले और एक बार अगस्त महीनेके आखिरमें। पेड़के चारों ओर थोड़ा थोड़ा जमीनमें ऐमोनिया मिला देना चाहिये। जड़के चारों ओर

६ से १२ इंच तक जगह छोड़कर पेड़के नीचे चारों ओर फैला देना चाहिये। दूसरी बार ऐमोनिया डालनेके साथही अच्छी तरह पानी देना चाहिये।

नोट—ऊपर लिखे हुए कायदे मामली तौरसे बताये गये हैं।

ऐमोनियाकी तादाद, डालनेकी तरकीब, दूसरी खादोंके साथ मिलानेके कायदे वगैरहमें खेतीकी जमीनकी हालतके अनुसार हेर फेर हो सकता है।

किसी तरहका संदेह होनेपर पासमें रहने वाले गवर्नमेण्ट एग्रिकलचर डिपार्टमेण्टके अर्थात् सरकारी कृषि विभाग के किसी कर्मचारीसे या पासके सलफेट और ऐमोनिया डीपो के कर्मचारीसे सलाह ली जा सकती है। वह खुशीसे सलाह देकर मदद देंगे।

यह किताब Fertiliser Propaganda of India Limited, 18, Strand Road, Calcutta से निकली है और यह बहुत खुशीके साथ हरकिसमकी इतला खादके बारेमें देनेको तैयार है।

श्री मनोहरदास-जैनग्रन्थमाला का-चतुर्थ-पुष्प ।

भगवान् महावीर का—

अहिंसा-सिद्धान्त

लफ्टिनेन्ट जनरल हिज़हाईनस

महाराजाधिराज श्री भूपेन्द्रसिंह
साहिब महेन्द्रबहादुर

G.C.S.I. G.C.I.E. G.C.V.O. G.B.E. D.S.O. A.D.C.

पटियाला नरेश के ४० वें मङ्गलमय जन्मदिन के
उपलक्ष्य में उपहार स्वरूप प्रकाशित

प्रकाशक:—

स्वर्गीय रा० ब० लाला सुखदेवसहाय जी के सुपुत्र

सेठ ज्वालाप्रसाद माणकचन्द जैन जौहरी

लेखक:—

पं० श्री पृथ्वीचन्द्रजी महाराज के सुशिष्य-

श्री अमरचन्द्र जी जैन मुनिः

श्री विजयदशमी) १००० (मूल्य
विक्रमाब्द १९८८) प्रति (अहिंसा पालन

वन्देवीरम् ।

जीयाच्चिरं सज्जन पङ्कजार्कः कल्याण रत्नाकरतारकेशः ॥
शान्तः सुधीरः करुणाश्रयोऽयं "भूपेन्द्रसिंहो भुवि शासकेशः ।

दो—शब्द ।

प्रिय बन्धुओं !

अहिंसा की भावना और अहिंसा का पालन मनुष्यत्व का पूर्ण विकाश है । अहिंसा का विरोध कहीं भी नहीं मिलता । धर्मिशातल के सभी समुल्लेख योग्य धर्मों में अहिंसा के पालन करने वाले नरपुंगव बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखे जाते हैं ।

जैन धर्म में जो अहिंसा की व्याख्या की गई है उसका एक अच्छा विवेचन इस पुस्तिका में पूज्य श्री १००८ श्री मोतीरामजी महाराज के शिष्यानुशिष्य, मुनि श्री अमरचन्द्रजी महाराज ने किया है । प्राणी मात्र के कल्याण की कामना से प्रेरित होकर मैं इसे प्रजापालक नृपेन्द्र पटियालाधीश की ४० वीं वर्ष ग्रन्थि के शुभ तथा कल्याणमय अवसर पर बड़ी प्रसन्नता के साथ आप सज्जनों की सेवा में समर्पित करता हूं । मुझे आशा है कि मेरे साथ आपभी प्रार्थी होंगे कि "ऐसा शुभ अवसर हमें" सर्वदाही प्राप्त होता रहे ।

भवदीय—

ज्वालाप्रसाद माणकचन्द जौहरी

विजयदशमी १९८८ महेन्द्रगढ़ (पटियाला राज्य)

❀ अहिंसा सिद्धान्त ❀

विजयतामहिंसा भगवती

अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमम्

"स्वामी समंतभद्र"

१-अहिंसा परमो धर्मः

—:०:—

प्रिय पाठकों! लगभग २५०० वर्ष हुए एक समय वह था जब पवित्र भारतवर्ष की स्थिति बहुत कुछ भयावह एवं चिन्ता जनक थी। चारोंतरफ अत्याचार का बाजार गर्म था देवी देवताओं के बलिदान के बहाने प्रतिदिन लाखों की तादाद में निरपराध पशुओं को तलवार के घाट उतार दिया जाता था- बलिदान के लिये इकट्ठे किये गये दीन-हीन स्त्री और पुरुषों के सकरुण हा हा कार से आकाश फटा जाता था -मन माने शास्त्र बना बना कर जैसे तैसे मांसाहार की पुष्टि की जारही थी-शराब

आदि मादक द्रव्यों का पानी की तरह प्रयोग किया जाने लगाथा—पूर्ण अहिंसा वादी जैन धर्म का प्रकाश प्रातःकालीन दीपक के प्रकाश के समान धुंधला हो चुकाथा—कि बहुना तलवार के भक्तों ने मत्स्य-न्याय चलाकर सारे भारत में त्राहि त्राहि मचारक्खी थी। ठीक—ऐसे समय में दुःखित भारत की रक्षा करने के लिए—निरपराध मनुष्य और पशुओं का रक्तपात मिटाने के लिए अहिंसा के अवतार, जैनधर्मोद्धारक, भगवान महावीर ने बिना किसी भेद—भाव के समग्र संसार को सुख-शान्ति पहुंचाने वाला पवित्र अहिंसा का झण्डा फिरसे लहराया और ब्राह्मण से लेकर शूद्रपर्यन्त स्त्री—पुरुषों को समान भावसे अपनी शान्तिपूर्ण सु मधुर भाषा में शान्त-उपदेश दिया—"अहिंसा परमो धर्मः" अहिंसा परम यानी प्रधान धर्म है। इससे बढ़कर संसार में अन्य कोई धर्म नहीं है। अहिंसा माता है अन्य धर्म पुत्र हैं सब की उत्पत्ति अहिंसा से ही है। अहिंसा छोटे-मोटे चर-अचर सभी जीवों की रक्षा करने वाली है-अहिंसा सुख और शान्ति का झरना बहाकर सब जीवों की दुःख दावानल संतप्त हृदय भूमिको ठंडी करने वाली है। अहिंसा-सुहृत के क्रीड़ा

करनेका सुन्दर स्थान है। अहिंसा–पाप रूप धूली को उड़ाने के लिये प्रबल वायु के सामान हैं। अहिंसा-स्वर्ग और मोक्ष में चढ़ने के लिये सरल से सरल सोपान (जीना) है। अतएव अयि भव्य प्राणियों! आवो आवो अहिंसा के सुखद-झण्डे के नीचे आवो-आकर अहिंसा के गूढ़ तत्वों को समझो। अगर तुम्हें सुख–शान्ति के साथ संसार में जीकर आत्म-कल्याण करना है तो अहिंसा भगवती की मन लगाकर उपासना करो। यही तुम्हें सबकुछ देगी। अहिंसा भगवती की– शक्ति अपरंपार है। इसकी थाह नहीं है। यही सच्ची जगदम्बा है। अफसोस! तुम किस वहम में पड़े हुये हो? कहाँ जा रहे हो? कहाँ भयावह जंगलों में भटक रहे हो? खूनमें हाथ डाल करके किस भगवती की उपासना कर रहे हो? भला जो निरपराध मूक प्राणियों का खून पी पी कर प्रसन्न होती है- वह कैसी भगवती है? कैसी जगदम्बा है? ऐसी को तो राक्षसी कहनी चाहिए। राक्षसी के लिए भगवती और जगदम्बा शब्दों का प्रयोग करके इन पवित्र शब्दों को गंदे मत बनाओ। जरा सोच–समझकर अपनी बुद्धिसे कामलो। हिंसा से तुम्हें कभी शान्ति नहीं मिलेगी। हिंसा से शान्ति की आशा करना-आकाश के

फूलों की सुगन्धि से अपने कलेवर को सुगन्धित करना है—टीबों की बालू रेता से तेल निकाल कर अपने शरीर को चिकना-चुपड़ा एवं परिपुष्ट करना है—बाँझ के अंग से पैदा हुये लड़के की बरात का बराती बनकर मिष्ठ मोदकों द्वारा मुखको मीठा करना है। भव्यों! हिंसा महा अधर्म है—महा पाप है। यह तुम्हारा बेड़ा गर्क करदेगी। जो दूसरों की हिंसा करते हैं वास्तव में वे अपनी ही हिंसा करते हैं। हिंसा चाहे देवी देवताओं को प्रसन्न करने के लिये की गई हो चाहे धार्मिक क्रियाकाण्ड के लिये की गई हो—चाहे अपने और अपने कुटुम्ब के खान-खान पान आदि व्यवहार के लिये की गई हो हिंसा हिंसा ही रहती है-दुःख की देनेवाली ही रहती है। तीन काल में भी हिंसा से धर्म नहीं हो सकता देवता प्रसन्न नहीं हो सकता-सुख नहीं हो सकता। यदि कभी धर्म होगा-देवता प्रसन्न होगा-सुख होगा तो अहिंसा से ही होगा। यह सिद्धान्त निर्विवाद है-स्वयं सिद्ध-है इसकी सिद्धि के लिये पोथी पुस्तकोंको टटोलने की जरूरत नहीं इसकी सिद्धि के लिये टटोलो अपने अपने हृदय को। हे मनुष्यों! तुम भूलेहुएहो जो तलवार के ज़रिये बिजयी बनना चाहतेहो यह

रक्खो इस हिंसा का समर्थन करनेवाली नकलीतलवार से तो मिट्टी के पिण्ड स्थूल शरीर पर भी विजय प्राप्त नहीं किया जा सकता। अगर चाकैंट शरीर और आत्मा पर विजय प्राप्त करके तुम्हें विश्व विजयी बनना है तो इस लोह खण्ड रूप तलवार को फेंककर आत्म शक्ति पर पूर्ण विश्वास रखकर अहिंसा की चमचमाती हुई तलवार को ग्रहण करो और क्रमशः अहिंसावादी बनतेहुए पूर्ण अहिंसावादी बनजाओ।

भव्यो! अहिंसा खुद परमब्रह्म है-अपने भक्तों कोभी परमब्रह्म बनाती है। अहिंसा खुद अमर है-अपने भक्तों को भी अमर बनाती है। अहिंसा खुद अजेय है-अपने भक्तों कोभी अजेय बनाती है। अधिक कहनेसे क्या—

धम्मो मंगल मुक्किट्ठं—अहिंसा संजमो तवो।
देवावितं नमंसंति—जस्स धम्मे सयामणो॥

अहिंसामय धर्म सब मंगलों में प्रधान मंगल है। जिस भव्य प्राणीका अहिंसापरमोधर्म पर साचरण अटल—अचल विश्वास है—औरों की तो बात क्या देवताभी उस महापुरुष के चरणों में मस्तक टेक कर बार-बार नमस्कार करते हैं-बार-बार स्तुति

करते हैं और अपने को धन्य-धन्य कृत-कृत्य समझते हैं"।

प्यारे पाठको! जिस समय जनताने अहिंसाके अवतार का यह शान्तिदायक सुमधुर उपदेश सुना उसी समय जनता के हृदय से हिंसा के भाव छिन्न-भिन्न होने लगे-दिन प्रतिदिन अधिक से अधिक संख्यामें मुमुक्षु आ आकर भगवान महावीर के चरणों का आश्रय लेने लगे-अहिंसा—परमोधर्मः के सामुहिक अतुलित जय घोष से ब्रह्माण्ड को गुंजाने लगे। भगवान महावीर से अहिंसा के अत्यन्त गूढ़ सिद्धान्तों को प्रश्न पर प्रश्न कर करके समझने लगे। बस भगवान महावीर के प्रबल प्रचार से कुछही दिनों में सर्वत्र अहिंसा का साम्राज्य छागया-सर्वत्र हा हा के स्थान में अहा अहा का आनन्दपूर्ण घोष घोषित होगया—सर्वत्र झूठे बलिदान के गपोड़ों का नाम शेष हो गया—सब लोगों के हृदय पट पर अहिंसा परमो धर्मः महा वाक्य बज्र छाप की तरह अंकित होगया। कि बहुना पाठको! भगवान् महावीर ने अहिंसा धर्म द्वारा तमाम भारतवर्ष की काया पलट करदी-तमाम भारतवर्ष की दशा सुधारदी।

वाचक वृन्द ! जिसतरह भगवान् महावीर नें अहिंसा को परम धर्म के विशेषण से विशेषित किया है । ठीक इसी तरह आजभी २५०० वर्ष के बाद भगवान् महावीर के ही प्रवचनों का परि शीलन कर बीसवीं सदी का महा पुरुष महात्मा गांधी भी भारत को परतंत्रता के बंधन से मुक्त करने के लिये उसी महावाक्य को फिर दोहराता है-"हिंसा मृत्यु का नियम है, अहिंसा जीवन का नियम है। हिंसा विघातक है, अहिंसा विधायक है । हिंसा पशु बल है, अहिंसा मनुष्य बल है । हिंसा आसुरी संपत्ति है, अहिंसा देवी संपत्ति है । अतएव हिंसा अधर्म है और अहिंसा परमो धर्मः" अतः पाठको ! हिंसा से अपने को मुक्त करो अहिंसा का ठीक-ठीक पालन करो—भगवान् महावीर के शिष्य बनकर आत्म कल्याण करो-भगवान् महावीर की जय बोलते हुए भारत का उद्धार करो और बोलो अहिंसा भगवती की —जय! जय!! जय!!! ।



२—अहिंसा का संक्षिप्त लक्षण।

—:o:—

पाठको! बिना लक्षण के लक्ष्यका पता नहीं चल सकता। लक्षण के द्वारा लक्ष्य वस्तु की जाँच करना यह भारतीय प्राचीन पद्धति है। प्रस्तुत निबन्ध में अहिंसा हमारा लक्ष्य है अतः इसकी विस्तृत व्याख्या से पहले आपको इसका लक्षण बता देना भी मेरा प्रथम कर्तव्य है। वैसे तो "अहिंसा" महती है महती का लक्षण भी महान होना चाहिए--महान का लक्षण बताने वाला भी महान ही होना चाहिये। अहिंसा का संपूर्ण लक्षण बतादेना मेरे जैसे दुर्बल बुद्धियों की ताकत से बाहिर का काम है। फिर भी वीर प्रवचनों की कृपा से अहिंसा का संक्षिप्त लक्षण बताने की यथा शक्य चेष्टा की जाती है:—

अहिंसा के दो रूप हैं—१ निषेधात्मक (नकार) और २ भावात्मक (हकार) दुष्ट भावों से प्रेरित होकर किसी—को स्वयं दुःख देना नहीं दूसरों से दिलवाना नहीं देते हुये को

अच्छा समझना नहीं यह निषेधात्मक अहिंसा है। दुःख में पड़े हुए प्राणियों को अपनी शक्ति के अनुसार खुद सुख देना दूसरों से दिलवाना देते हुये को अच्छा समझना यह भावात्मक अहिंसा है। यही भावात्मक अहिंसा संसार में अनुकंपा, दया, करुणा और सेवा आदि विविध नामों से प्रसिद्ध है। निषेधात्मक और भावात्मक दोनों अर्थों को लेकर अहिंसा का सीधा-साधा छोटे से छोटा लक्षण यह निकलता है-"सुख-शान्ति के साथ खुद जीना दूसरों को जीने देना और जीनेवालों को जीने के लिये मदद करना" अहिंसा है।



३—सत्य आदि का अहिंसा में अन्तर्भाव।

—:०:—

अहिंसा समुद्र है तो सत्य आदि उसकी तरंगें हैं। अहिंसा सुमेरु है तो सत्य आदि उसके ऊंचे नीचे शिखर हैं। अहिंसा शरीर है तो सत्य आदि उसके हाथ पैर आदि अवयव हैं अर्थात्-सत्य आदि अहिंसा के ही रूपान्तर हैं। विचार की सूक्ष्म दृष्टि से

देखने पर सत्य आदि की अहिंसा से अलग कोई सत्ता ही नहीं रहती । कैसे नहीं रहती इसके लिये नीचे देखियेः—

सत्य—सत्य के माने हैं झूठ का त्याग करना झूठ का त्याग क्यों किया जाता है ? अहिंसा के लिये झूठ से दूसरी आत्माओं को और अपनी आत्मा को भी दुःख पहुंचता है । किसी को दुःख न देना यही अहिंसा है ।

अचौर्य-अचौर्य के माने हैं चोरी नहीं करना चोरी करने से दुःख का होना स्वतः सिद्ध है । प्राणों से भी प्यारे धन की चोरी हो जाने पर मनुष्यों को महा दुःख होता है बहुतों का तो इसी दुःख में प्राणान्त भी हो जाता है । अपने को भी कभी कभी कारागार में सड़ना पड़ता है । पर जन्म के दुःखों का तो कहना ही क्या ? इसलिये अहिंसा के लिये चोरी का त्याग किया जाता है ।

ब्रह्मचर्य-ब्रह्मचर्य के माने हैं विकार युक्त नहीं होना । विकार हमेशा दुःख का देने वाला है । ब्रह्मचर्य भंग से शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ नष्ट हो

जाती हैं। बहुत से तो ब्रह्मचर्य की मर्यादा से अधिक बाहर होजाने पर भयंकर रोगों के शिकार होकर अकाल ही काल के गाल में पहुंच जाते हैं। इसलिये अहिंसा के लिये ही ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया जाता है।

अपरिग्रह- अपरिग्रह के माने हैं अपनी इच्छाओं को परिमित करना। बढ़ी हुयी इच्छाएं दुःख की देने वाली हैं। अपनी बढ़ी हुयी इच्छाओं को पूरी करने के लिये मनुष्यों को बहुत कुछ अत्याचार करने पड़ते हैं—दीन हीन जीवों को दुःख देने पड़ते हैं और अपनी इच्छाओं पै काबू न होने से खुद परिग्रही को भी बहुत तकलीफ उठानी पड़ती है। इस लिये अहिंसा की दृष्टि से ही अपरिग्रह व्रत धारण किया जाता है।

इसी प्रकार अन्य धृति, क्षमा, दम, आदि धर्मों का भी अहिंसा में अन्तर्भाव हो जाता है पाठक स्वयं विचार करें विस्तार भय से यहां नहीं लिखा जाता है।

४—अहिंसा का विकाश क्रम

—:०:—

अब प्रश्न यह होता है कि–अहिंसा किस तरफसे प्रारंभ करनी चाहिए अर्थात् सूक्ष्मजीवों की अहिंसा करते–करते स्थूल जीवों की अहिंसा पे आना चाहिए या स्थूल जीवों की अहिंसा करते करते सूक्ष्म जीवों की अहिंसा पर आना चाहिए क्यों कि बिना क्रम के जाने कार्य करने से फायदा के बजाय जबर्दस्त नुकसान ही होता है। अहिंसा सिद्धान्त नहीं महा सिद्धान्त है इसका पालन करना मोम के दान्तों से लोहे के चने चबाना है। बिना अहिंसा के क्रम के जाने अहिंसा का कट्टर पक्षपाती भी अवश्य ही भूल में आकर कठिन प्रसंगों पर गल्ती खा लेता है उत्तर में कहना है कि–भगवन् महावीर के सिद्धान्तानुसार अहिंसा का प्रारम्भ मनुष्यों से करना चाहिए। मनुष्यों में भी सब से पहिले अपना कुटुम्ब फिर पड़ोसी फिर महल्ला फिर ग़ाम फिर अपना देश फिर अपने समीपवर्ती देश यों बढते बढते अन्तमें मनुष्य मात्र अहिंसा का विषय ठहरता है। फिर

पशु संसार में सबसे पहिले अपने संगमें आए हुये पशुपक्षी फिर अन्य पशु पक्षी फिर कीट पतंग यों बढते बढते अन्तमें वनस्पति आदि स्थावर संसार अहिंसा का विषय क्षेत्र ठहरता है परन्तु जो महानुभाव इस क्रम के विपरीत चलते हैं— मनुष्यों की उपेक्षा करके छोटे—छोटे जीवजंतु ओं के प्रति अहिंसा का विस्तार करते हैं। वे दूर असल अहिंसा के सिद्धान्त से गिरजाते हैं। पाठको! मुझे ऐसे मनुष्यों का पता है जो अपने हाथ से हरी सब्ज़ी चीरते हुये थरथरा कर जरासा मुँह बना लेते हैं — जो दीपे के ऊपर आते हुये पतंगों को देख कर हा! हा!! करते हुये चिल्ला कर दौड़ते हैं अफसोस! वही अहिंसा वादी वीर काम पड़ने पर बिना किसी शस्त्र के बड़ी निर्दयता के साथ मनुष्यों का गला काट लेते हैं एक को सो सो के हज़ार हज़ार के लाख बनाकर अदालत में दावा ठोक कर इधर उधर से दसबीस झूठी गवाही दिलवाकर, कुर्की करवाकर, बिचारे दीन हीन जनों को घरसे बेघर करदेते हैं। खेद है ऐसे मनुष्योंने पवित्र अहिंसा धर्म को कलंकित करदिया है—पूरी तरह कलंकित कर दिया है। मित्रो! मेरे कहने का आशय

ऐसा नहीं है कि जबतक समस्त मनुष्य जाति के प्रति अहिंसा के भाव न होजायँ तबतक पशु जाति पर अहिंसा के भाव रखने ही नहीं। पर कहने का आशय केवल इतना ही है कि जिस मनुष्य के हृदय में छोटे-छोटे कीड़ों मकोड़ों जैसे जीवों की तो दया आती है और मनुष्य की दया नहीं आती है। वह मनुष्य सच्चा दयावान नहीं कहला सकता। पशु की बनीस्वत दया करने का पहला अधिकार मनुष्य के प्रति होना चाहिए क्यों कि—जिसको मनुष्य के प्रति दया आगई समझना चाहिये कि वह सब पापों से छूट जायगा। जो मनुष्य होकर भी मनुष्य के प्रति दया नहीं रखता वह पापों से अलग नहीं हो सकता। याद रक्खो—झूठ मनुष्य के साथ ही बोला जाता है-चोरी, दगा, फाटका, लड़ाई, झगड़ा, मुकद्दमे बाजी सब मनुष्य के साथ ही होते हैं अतः मनुष्य के प्रति दया रखने वाला कभी इन कामों को नहीं कर सकता। इसलिये अहिंसा के पैगम्बर भगवान् महावीर का कहना है कि अहिंसा का प्रारम्भ मनुष्य से करना चाहिये। इस के बिना कोई भी सिद्धि नहीं हो सकती।

५ अहिंसा और कायरता का कोई सम्बन्ध नहीं



बहुत से भाई झूठे पाण्डित्य में आकर कहते हैं कि अहिंसा वास्तव में कायरता है। जैनयों की अहिंसा ने भारत को कायरता सिखलाई है—भारत को परतंत्रता की बेड़ी पहनाई हैं। जबसे भारत में "चींटी को मत मारो पाप लगेगा, खटमल को मत मारो पाप लगेगा, ततैय्ये को मत मारो पाप लगेगा" इस प्रकार की जैनी शिक्षा का प्रचार हुआ है तब से हम ऐसे बुजदिल हो गये हैं कि हम अपनी और अपने देश की मान मर्यादा की रक्षा नहीं कर सकते—हम वीरता के झूले में झूल नहीं सकते—हम अपनी विजय वैजयन्ती लहरा नहीं सकते। इसलिये हमें हिंसा वादी बनकर दुनियाँ के पर्दे से अहिंसा का अस्तित्व ही मिटा देना चाहिए।

लेकिन पाठको! ये भाई यों कहते हुए बड़ी भारी भूल करते हैं। मैं इन भाइयों से बड़े ज़ोर के साथ कहता हूँ कि मित्रो! जैनियों की अहिंसा में कायरता को बिल्कुल भी जगह नहीं है। अहिंसा में और कायरता में तो प्रकाश

और अन्धकार का सा बड़ा भारी फर्क है। मित्रो! अहिंसा उत्थान का मार्ग है उन्नति का मार्ग है — भारत का अधः पतन जैनी अहिंसा के कारण नहीं हुवा। जब तक भारत में अहिंसा वादी जैन धर्म की विजय ध्वजा लहराती रही तब तक का भारत का इतिहास स्वर्णा क्षरों में लिखे जाने योग्य है। मित्रा! आप अहिंसा के महत्व को नहीं समझते आप व्यर्थ की हिंसा करने में ही अपनी वीरता समझते हो। चींटी खटमल जूँ तत्तैय्ये जैसे विवेकहीन जीवों को मार मार कर वीर बनना जैनियों को अभीष्ट नहीं है ऐसी घृणित वीरता तो आप लोगों को ही मुबारिक रहे।

अहिंसा वादी जैन वीरता अपनी वीरता अत्याचारियों पर चलाते हैं। सच्चे जैनी देश पे जाति पे धर्म पे होते हुए अत्या चारों को सहन नहीं कर सकते वे उस समय चुप चाप न दुबक कर अपनी सच्ची वीरता का जौहर दिखाते हैं। सच्चे जैनी बलात् युद्ध का मौका आजाने पर नीति के साथ धर्म युद्ध करते हैं इसके लिये देखो— महाराजा उदयन, महाराजा चेटक, वीर भक्त—वरुण नागनतुआ, महाराजा नन्दिवर्धन, मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त, महाराजा संप्रति

महाराजा कलिंग चक्रवर्ती खारवेल, महाराजा अमोघ वर्ष, महाराजा कुमारपाल आदि आदि जैन राजाओं के क्रान्ति कारी जीवन चरित्रों को। बंधुओं ! ऊपर लिखे राजा सबके सब कट्टर जैनी थे - कट्टर अहिंसा वादी थे। परन्तु इनके शासन कालमें भारत गारत नहीं हुवा-भारत पराधीन नहीं हुवा अतः ये बात स्वयं सिद्ध होजाती है कि अहिंसा ने भारत को नहीं गिराया। मैं पूछता हूँ की क्या पृथ्वीराज के हृदय में विशेष दया थी ? क्या इसने अहिंसा वादी होने के कारण ही शत्रुओं का मान मर्दन नहीं किया था? अथवा मुसलमानों ने भी अहिंसा का पाठ पढ़लिया था? जो इनका राज्य जाता रहा नहीं कभी नहीं यदि पक्षपात को छोड़कर के विचार किया जायतो मालूम होजायगा कि

इस घर को आग लग गई घरके चिराग़ से।
दिल के फफोले जल उठे सीने के दाग़ से" ॥

यदि भारत में परस्पर विद्रोहानल उत्पन्न नहीं हुवा होता-यदि भारत में भोग विलास का दौर दौरा नहीं हुवा होता तो आज भारत की यह दयनीय दशा नहीं होती कभी नहीं होती। मित्रो ! भारत का पतन खुद भारत वासियों

नें ही ईर्षा, द्वेष, दम्भ, अहंकार, अनैक्य, भोगबिलाश आदि दुर्गुणों के जरिये से किया है। आज भी ये दुर्गुण भारत में दिखलाई दे रहे हैं। याद रक्खो—जबतक इन दुर्गुणों की सत्ता नहीं मिटेगी तबतक भारत का उत्थान नहीं होगा- याद रक्खो—इन दुर्गुणों का नाश करने के लिये तुम्हें अहिंसा बादी बनना पड़ेगा—अवश्य बनना पड़ेगा। बिना अहिंसा के भारत का उद्धार शश शृङ्ग के समान है। मित्रो ! हाँ, यहाँ पर आपकी एक और भी बात रहजाती है। आप हम अहिंसा बादी धर्म बीरों को नीचा दिखाने के लिये जब कभी मौका पड़ता है भाग दौड़कर गीता उठाकर लाते हैं—अर्जुन के बिचार दिखलाते हैं और कहते हैं कि कृष्ण जी नें अहिंसा का खण्डन कर हिंसा की स्थापना की है। परन्तु-आप गीता का अर्थ समझने में भूल करते हैं। कौन कहता है कि अर्जुन उस समय अहिंसा वादी बनाया-कौन कहता है कि श्रीकृष्णजी ने उसे हिंसा वादी बनाया था। अर्जुन के हृदय में अपने कुटुम्ब के प्रति मोह के साथ-साथ कायरता आई थी—अहिंसा नहीं। अर्जुन मोह के बशीभूत होकर ही अपने सामने युद्ध करने कलिये

खड़े हुये सगे सम्बन्धियों को नहीं मारना चाहता था। गीता के देखने से स्पष्ट मालूम होता है कि अर्जुन अन्य सैनिकों को मारने के लिये तो उस समय भी तैय्यार था। फिर क्या गैरों को मार देना और अपने सगे सम्बन्धियों के सामने हथियार रख देना यही अहिंसा धर्म है ? समझ की बलिहारी है—जो मोह को भी अहिंसा कहते हैं। भगवान महावीर के सिद्धान्त में मोहका नाम अहिंसा नहीं है। मोह महा पाप है। मोह मनुष्य के सद् गुणों को नष्ट करदेता है।

अब रही दूसरी बात कि—महाराज कृष्ण ने हिंसा की शिक्षादी। यह सर्वथा झूठ है—कृष्णजी ने हिंसा को कभी अच्छी नहीं बताई। कृष्णजी अहिंसा की तारीफ करते हैं और गीता में ही कहते हैं कि।

अद्वेष्टा सर्व भूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःख सुखःक्षमी ॥

किं बहुना-ऊपर की बातों से स्पष्ट सिद्ध हो चुका है कि-श्री कृष्णजी ने अर्जुन का मोह हटाया था न कि उन्होंने अर्जुन को हिंसा की शिक्षा दी थी। और भी लीजिये श्रीकृष्ण पाण्डवों की तरफ से कौरवों के पास आकर केवल पाँच

गाँव लेकर ही संधि करने को तैय्यार हो गये थे। ऐसा क्यों किया गया? क्या श्रीकृष्ण कायर थे? शान्ति रखना ही यदि कायरता हो तो श्रीकृष्ण को भी कायर कहना चाहिए। पर यह बात नहीं थी। कृष्णजी अहिंसा के कट्टर पक्षपाती थे उनको व्यर्थ का रक्तपात बिलकुल भी पसंद नहीं था। इसलिये ही वह उतरते-उतरते पाँच गाँवों पर संधि करने को उतर आये थे बस पाठकों? अब इस विषय पर अधिक प्रकाश डालने की जरूरत नहीं है प्रकाश स्वयं डला डलाया है। अहिंसा और कायरता का कोई सम्बन्ध ही नहीं कायरता का स्थान भय है भय का जन्म हिंसा से होता है। अतः परंपरा से कायरता की माता हिंसाही है। हमारी अहिंसातो अभय के ऊपर टिकी हुयी है जरा भी मनमें भय आयातो अहिंसा गईतो अहिंसा वादी के लिये कहा है··

यस्मान्नो द्विजते लोको—लोकान्नो द्विजते च यः"

अर्थात् — जो खुद दुनियाँ से नहीं डरता और जिससे दुनियाँ नहीं डरती वही सच्चा अहिंसा वादी है। पाठको! अहिंसा में कितनी वीरता है? कितनी ताकत है? इसका परिचय गत अहिंसामय महायुद्ध में भारत के भोले भाले नन्हें-नन्हें बालकों ने और कोमलाङ्गी ललनाओं ने

डंके की चोट दे दिया है। अबभी यदि आपकी आँखें नहीं खुलें तो हम निराश हैं, प्रत्यक्ष को तो नास्तिक भी मानते हैं।

—:o:—

६-अहिंसा के लिये प्रेम और बुद्धि की आवश्यकता



प्रत्येक वस्तु का विकाश साधनों के ऊपर निर्भर है। बिना समुचित साधनों के विकाश का होना सर्वथा असंभव है। जिस तरह नवजात शिशु का विकाश शुद्ध दुग्धपर—उपवन की शोभा बढ़ाने वाले सुन्दर सुन्दर—वृक्षों का विकाश अपने अनुकूल पृथ्वी, जल, वायु पर—छल छल करके बहने वाली नदियों का विकाश झरनों पर निर्भर है। उसी तरह अहिंसा के विकाश के लिये भी साधनों का होना अत्यन्त जरूरी है। बिना साधनों के अहिंसा का भी विकाश नहीं हो सकता विकाश ही नही अहिंसा का अस्तित्व भी नहीं रह सकता अहिंसा के अस्तित्व के लिये कहिए या अहिंसा के विकाश के लिये कहिए प्रेम और बुद्धि की बड़ी भारी आवश्यकता है। वास्तव में प्रेम और बुद्धि ही अहिंसा के सच्चे साधन हैं

प्रेम के होने पर मनुष्य से किसी तरह की भी हिंसा नहीं हो सकती जिस तरह माता प्रेम के कारण ही अपने बालक को किसी तरह का कष्ट न देने की हमेशा सावधानी रखती है, उसी तरह यदि जिन मनुष्यों में समाज के लिये देश के लिये – यावत् अखिल संसार के लिये सच्चा प्रेम हो जायेगा व बिना किसी के कहे – सुने अपने आपही हिंसा से दूर हो सकेंगे। जब तक मनुष्य के मानस — मन्दिर में शुद्ध—प्रेम का संचार नहीं होता है। तबतक ही उसको अहिंसा के पालन करने में बड़ी भारी कठिनता मालूम पड़ती है। प्रेम के होजाने के बाद तो बिना किसी कठिनता के अहिंसा धर्म का पालन होजाता है- किं बहुना प्रेम की महिमा अपरंपार है। प्रेम मनुष्य को स्वाभाविक ही दूसरे प्राणियों के कल्याण करने की कामना वाला बना देता है। जिस तरह प्रेम है उसी तरह बुद्धि भी है। बिना बुद्धि के कुछ भी नहीं बन सकता। क्योंकि अधिकतर हिंसा अज्ञान मूलक ही होती है। अनेकानेक सूक्ष्म-स्थूल तर्क-वितर्कों द्वारा गन्तव्य मार्ग को निश्चित करना बुद्धिका काम है। अहिंसा किसे कहते हैं? अहिंसा किसतरह करनी चाहिये?

प्रत्यक्ष में अहिंसा करते हुये भी वास्तव में हिंसा किस तरह हो जाती है ? हिंसा किसे कहते है? हिंसा क्यों नहीं करनी चाहिये? हिंसा से क्या-क्या हानियाँ होती हैं? दुःख और सुख किन किन कारणों से होते हैं? दुःख और सुख की क्या परिभाषा है? इन सब प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर बिना बुद्धि के नहीं मिल सकता । ज्यों ज्यों बुद्धि अधिकाधिक निर्णयपर पहुंचती चली जाती है त्यों त्यों अहिंसा का विकाश भी शीघ्र गति से होता चला जाता है । अन्त में अहिंसा का पूर्ण विकाश होने पर आत्मा परमात्मा बनजाताहै। प्रिय पाठको ! जिस समय अहिंसा के विकाश के लिये पूर्वोक्त साधनों का सुचारुरूप से प्रयोग किया जायगा उस समय ही हमारी आत्मा हमारा समाज, हमारा देश, उन्नत होगा, सब जगह न्याय, अद्वय सहकार सत्य आदि सद् गुणों का अतुल साम्राज्य होगा एवं भगवान् महावीर की जय का नारा बुलंद होगा ।

—:o:—

७–हिंसा किसे कहते है ?

—:o:—

पाठको ! संसार की शान्ति का भंग करने वाली हिंसा एक भयंकर राक्षसी है। इसने तमाम संसार को ऊँगलियों पे उठा रक्खा है। जो प्राणी इसके पंजे में फँस जाता है वह दुनियाँ से अपना अस्तित्व खोकर ही रहता है। पर धन्यवाद है उन महापुरुषों को जिन्होंने इसका सर्व नाश करने के लिये संसार को अहिंसा का अमोघ शस्त्र बतलादिया है। परन्तु— जब तक योद्धा को शत्रु का पता नहीं होता यानी जब तक योद्धा शत्रु को नहीं पहचानता हो तब तक योद्धा कैसाही क्यों न विलक्षण योद्धा हो तेजसे तेज शस्त्र के होते हुये भी शत्रुको नहीं मार सकता। अतएव अहिंसा की संक्षेप्त व्याख्या के बाद अब आप लोगों को यह बताया जाता है कि हिंसा का असली स्वरूप क्या है। हिंसा किसे कहते हैं? हिंसा कब और किस तरह से होती है? मित्रो! जैन तीर्थंकर भगवान् महावीर के सिद्धान्त के अनुसार केवल किसी के

प्राण लेलेना — किसी के शरीर को कष्ट देना— किसी के चित्तको दुःखित करना ही हिंसा नहीं है । हिंसा की व्याख्या बड़ी गंभीर है। हिंसा की संकुचित व्याख्या नें ही संसार का सर्वनाश किया है। अफसोस! अधूरी व्याख्या कर ने वालों नें धर्म का मलियामेट कर दिया है-धर्म के ऊपर से जनता के विश्वास को कपूर की तरह उड़ा दिया है। परन्तु "अहिंसा परमोधर्मः" के सिद्धान्त को विश्व भर में गुञ्जाने वाले— भगवान महावीर के प्रवचनों का ठीक- ठीक मनन करने वाले जैनाचार्य हिंसा की व्याख्या करते समय बहुत ऊँडे उतरे हैं। देखिये— वाचकपद धारी जैनाचार्य श्री उमास्वाति जी तत्वार्थ सूत्र में हिंसा की व्याख्या निम्न प्रकार से करते हैं—'प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा' इस सूत्र में प्रमत्तयोग और व्यपरोपण ये दो शब्द हैं प्रमत्तयोग का अर्थ—काम, क्रोध, मद, लोभ आदिक विकार और प्राण व्यपरोपण का अर्थ—प्राणोंका घात होता है । जिसका फलित अर्थ इस प्रकार है--"काम, क्रोध आदि विकारों के योग से अपने तथा पर केअथवा दोनों के ‡भाव प्राण और †द्रव्य प्राणों का घात करना हिंसा है" ।

‡भाव प्राण— आत्मा के विवेक आदि गुण †द्रव्यप्राण— मन, वचन, काय आदि

पाठको! इस लक्षण की सूक्ष्मता पर दृष्टि डालो आप को पता चलेगा कि किसी को मारदेना या किसी के अंग भंग करदेना मात्र ही हिंसा नहीं है। हिंसा तो हिंसा करने वाले के भावों पर अवलम्बित है। यदि शुद्ध भावों के होते हुये किसी का अनिष्ट हो भी जायतो वह प्रत्यक्ष में दिखाई देती हुयी हिंसा भी हिंसा नहीं है। और यदि अशुद्ध भावों के साथ किसी का कल्याण भी होजाय तो भी वह प्रत्यक्ष में भलाई के देखते हुये भी हिंसा ही है। इस के लिये—डाक्टर का उदाहरण ठीक लागू होता है—एक डाक्टर शुद्धा चारी शुद्ध अभिप्रायवाला है। जल्दी आराम करने की इच्छा से वह किसी रोगी के शरीर में चीरा देता है। परन्तु दैवयोग से बड़ी सावधानी रखते हुये भी नश्तर के कड़े आघात से रोगी की मृत्यु हो जाती है। ऐसे समय में सरासर रोगी के मर जाने पर भी डाक्टर उसका मारने वाला नहीं कहला सकता। क्यों कि—डाक्टर को मनुष्य की हिंसा का पाप नहीं लगता—हिंसा वहीं होती है, जहां अभिप्रायपूर्वक जीवका बध किया जाता है। अब लीजिये—कोई दूसरा डाक्टर है उसके पास कोई भयंकर व्याधि से पीड़ित रोगी आया है।

रोगी एकला है पर रूपराम की थैली वाला है। थैली में पड़े हुये रुपैय्ये भगवानों की छन छनाहट को सुनकर डाक्टर साहब के मुँह में पानी भर आता है। थैली हज़म करने की लालसा से डाक्टर दवाई के स्थान में रोगी को ज़हर दे देता है। पर दैव योग से रोगी एक ऐसे ही रोग से पीड़ित है कि वह ज़हर पीते ही चंगा हो जाता है और वारबार डाक्टर के चरणों में गिर गिर कर हज़ारों दुआएँ देता है—अब ऐसे प्रसंग पर डाक्टर से रोगी के आराम हो जाने पर भी डाक्टर को हिंसा का पाप अवश्य ही लगता है। क्यों कि डाक्टर के अभिप्राय साफ़ घातक थे। रोगी चङ्गा होगया सो अपने भाग्य से चङ्गा हो गया।

पाठको! ज्यादह कहने से क्या इन थोड़े से शब्दों से ही हिंसा के स्वरूप का ठीक-ठीक पता चलजाता है। पुस्तक की काया बढ़ने के भय से यहाँ अधिक नहीं लिखा जा रहा है। समय मिलाना फिर कभी लिखेंगे।

—:०:—

८—मांसाहार मानवप्रकृति के सर्वथा विरुद्ध है।

—:०:—

बड़े खेद की बात है कि—बहुतसे भाई जिह्वा इन्द्रिय के गुलाम होकर बड़े गर्व के साथ मांस खाते हैं। अफसोस! मनुष्य का चोला प्राप्त करके भी मांसाहार द्वारा राक्षस बनने में अपनी प्रतिष्ठा समझते हैं। पर ये भाई इसबात का जराभी विचार नहीं करते कि मांसाहार करने में महा पाप होता है। हमारे शास्त्रकारों नें मांसाहार का बड़ा ज़बरदस्त खण्डन किया है। भगवान महावीर स्वामी नें "कुडुंव हारेणं" कह कर मांसाहार से नर्क गति बतलाई है। सनातन धर्म के महर्षियों ने भी

'यावन्ति पशुरोमाणि पशुगात्रेषु भारत
तावद्वर्ष सहस्राणि पच्यन्ते पशु घातकाः'

'हे भारत! पशुके शरीर में जितने रोम हैं उतने हजार वर्ष पशुघातक नर्क में जाकर महा दुःख भोगते हैं" कहकर मांसाहार से दारुण दुःख बतलाया है। कुरान और बाईबिल के विषय में भाषा के अज्ञान के कारण मुझे कुछ पता नहीं है, फिर भी मौलवी

और पादरियों की जुबानी यही पता चला है कि कुरान और बाइबिल में भी मांसाहार की कड़ी निन्दा की है। एक मुसलमान भाई कहताथा—कुरान में लिखा है-हैवानों को पेट में रखके पेट को कब्र मत बनाओ मित्रो ! परोक्ष बादी धर्म शास्त्रों को अलग रहने दीजिये अब केवल प्रत्यक्ष ही को लीजिये—मांसाहार से शरीर की दशा बहुत खराब हो जाती है। मांसाहारियों का खून बिगड़ जाता है-शरीर पीला पड़जाता है—हाथ पैर सूख जाते हैं-पेट बढ़ जाता है-गले में गाँठ पैदा होजाती है। किं बहुना बहुत से मांसाहारी तो कुष्ठ आदि भीषण रोगों के महमान होकर अन्त में मृत्यु राक्षसी के भोजन बन जाते हैं। पाठको ! ऊपर की बातें गालों से पैदा नहीं हुयी हैं बल्कि परीक्षा से पैदा हुयी हैं। यह परीक्षा अमरीका में हजार बालकों के ऊपरकी थी पाँच सौ बालक बनस्पति भोजन पर रक्खे थे और इतनेही बालक मांस भोजन पर रक्खे गये थे। छमाही परीक्षा पर मांस भोजी बालकों की अपेक्षा बनस्पति भोजी बालक अधिक तंदुरुस्त स्वच्छ सुन्दर और हट्टे कट्टे पाये गये। बनस्पति भोजी बालकों में दया, क्षमा, धीरता, वीरता,

चतुरता आदि गुण प्रकट हुए और मांसभोजी बालकों में क्रूरता, भीरुता, मूर्खता आदि अवगुण प्रकट हुए। इस परीक्षा फल को देखकर वहां के लाखों मनुष्यों ने हमेशा के लिये मांस खाना छोड़ दिया। अतः यह बात सप्रमाण सिद्ध हो चुकी है कि मांसाहार शरीर के लिये बहुत हानिकारक है शरीर के लिये ही नहीं मानसिक शक्ति के लिये भी पूरा पूरा हानिकर है। फिर भी बहुत से भाई बिना विचारे कहते हैं कि-मांसाहारी बड़े बहादुर होते हैं बिना मांस के वीरता आती ही नहीं अतः वीरता के लिये मांस खाना ज़रूरी है।

पर यह बातें बिल्कुल युक्ति शून्य हैं। फलाहार में जो वीरता भरी हुयी है वह अद्वितीय है। देखिये-वनस्पति भोजी वानरवंशी वीरों ने लंका निवासी मांसाहारी राक्षसों की क्या गती की थी? वनस्पति भोजी भीमने मांसाहारी हिडम्ब, बक आदि राक्षसों का किस तरह प्राणान्त कियाथा? वनस्पति भोजी महाबली अर्जुन ने एकल्लेही कालकेतु आदि लाखों राक्षसों का किस तरह समास्थान कियाथा? वनस्पति भोजी जैनसम्राट् चन्द्रगुप्त ने यूनान के बादशाह का किस तरह मान मर्दन

कियाथा? प्रसिद्ध मरेहटों ने किस तरह दुनियाँ में अपनी धाक मचाई थी? क्या हनुमान, भीम, अर्जुन, चन्द्रगुप्त आदि वीरों की कथा इस बातको सिद्ध नहीं करती कि फलाहारी के सामने मांसाहारी वीरता के लिहाज़ से नहीं टिक सकते? अच्छा इन दूरकी बातों को जाने दीजिये फलाहार सम्बन्धी वीरता का जीता जागता ही उदाहरण लीजिये—विश्वविश्रुत, शक्तिशाली राममूर्ति क्या मांसाहारी है? नहीं कभी नहीं वहतो केवल फलाहारी है-फलाहार के बलसे ही उसने हिंदुस्तान से बाहर यूरोप, अमरीका आदि सुदूर देशों में अपनी विजय का डंका बजाया है। अतः यह निर्विवाद है कि मांसाहारियों की अपेक्षा फलाहारी विशेष बलवान होते हैं। मित्रो! और बातों को जानेदो मांसाहार मनुष्य प्रकृति के भी सर्वथा विरुद्ध है-मनुष्य जैसे शरीरवाला और मनुष्य जैसे काम करने वाला बंदर क्या मांसाहारी है? नहीं वहतो फलाहारी है। मनुष्य की भाषा सीखने वाला और साफ़-साफ़ ज्यों की त्यों चटाचट खटाखट संस्कृत जैसी कठिनतर भाषा बोलने वाला तोता क्या मांसाहारी है? नहीं वहतो साफ़ फलाहारी है। बस फिर क्या कहें मनुष्य के समान रहने वाले पशु

पक्षी तो माँस नहीं खावें और मनुष्य खुद माँस खाय कैसी ग़ज़ब की बात? कैसी लज्जाकी बात? कैसी दुःखकी बात? अच्छा और सुनिये मनुष्य दरअसल मांस भोजी प्राणी नहीं है। क्यों कि वह फलाहारी शाकाहारी गाय भैंस बंदर की तरह ओंठ टेक कर पानी पीता है इसके विपरीत सिंह कुत्ता बिल्ली आदि मांसाहारी प्राणी जीभसे चपल चपल कर पानी पीते हैं और भी मनुष्य मांसाहारी नहीं है क्यों कि मनुष्य के जबड़े बनस्पति भोजी गाय, भैंस, बंदर आदि की तरह गोल होते हैं कि बहुना मित्रो! धर्म के लिहाज़ से—चारित्र के लिहाज़ से – आर्थिक दशा के लिहाज़ से—शरीर के लिहाज़ से – बुद्धि के लिहाज़ से – प्रकृति के लिहाज़ से मांस खाना सर्व प्रकार से ख़राब है। प्रिय बन्धुओं! आप मनुष्य हो आपके अन्दर थोड़ी बहुत मनुष्यता होनी चाहिये दीन पशुओं की रक्षा करना मनुष्य मात्र का प्रधान कर्तव्य है। जब आप अपने कट्टर दुश्मन को भी मुँह में घासका एक तिनका ले लेनेपर सदय होकर छोड़ देते हो तो फिर अफ़सोस है आप सदैव घासके खाने वाले पशुओं पर किस नीति को लेकर हाथ उठाते हो मनुष्यों! पशुओं को पशु

मत समझो–निकम्मे मत समझो पशु तो तुम्हारे सच्चे मित्र हैं। इन के बिना तुम्हारा संसार में निभाव नहीं हो सकता इस के लिये " जीव दया " मासिक पत्र के भी स्वर्ण वाक्य देख लीजिये "हमारे देश के रक्षक सचमुच ये पशु हैं, हमारे देश की दौलत सच मुच ये पशु हैं, हमारा बल और बुद्धि सब कुछ ये पशु हैं, हमारी उन्नति का सुदृढ़ पाया ये पशु हैं "।

१–सामाजिक–हिंसा

—:०:—

पाठको अब क्या लिखें लिखते आँखों में अंधेरी आती है। शोक! हमारे अहिंसा प्रधान भारत वर्ष जैसे देश में भी अन्य हिंसा के साथ–साथ सामाजिक हिंसा कितने ज़ोरों पर चली हुयी है। जिधर देखो उधरही समाज में सामाजिक हिंसा के कारण हाहाकार मचा हुआ दिखाई देता है– सामाजिक हिंसा की धूँ–धूँ करके धँधकती हुयी भट्ठी में रोज़ ब-रोज़ निरपराध मनुष्य पतंग की भाँति जल जल कर भस्म होने जारहे हैं। आप लोगों की जानकारी के लिये अब यह दिखलाया जाता है कि– सामाजिक हिंसा किसे कहते हैं ?

१—बाल विवाह—विवेक हीन माता पिता झूठे लाड चाव में आकर अपने छोटे-छोटे अबोध बालकों का विवाह कर देते हैं। भला जिन लड़के लड़कियों को अच्छी तरह यह भी पता नहीं होता कि पत्नी किसे कहते हैं? पति किसे कहते हैं? उन्हीं का आपस में स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध पति-पत्नी का संबन्ध जबर्दस्ती जोड़ दिया जाता है—कैसा कैसा दिल दहलाने वाला दृश्य है!

पाठको आगे-आगे क्या लिखूँ-लिखते लिखते लेखनी थर थराती है—कुछही दिनों में यह नया रंग रंगीला जोड़ा असमय में ही अपनी शारीरिक और मानसिक शक्तियों को नष्ट भ्रष्ट कर देता है और जल्दी ही अनेका-नेक भयंकर रोगों का शिकार होकर सबके देखते देखते मौत के मुँह में पहुँच जाता है शर्म! शर्म!! शर्म!!!

२—अनमेल विवाह—अनमेल विवाह भी भारत में खूब ज़ोरों पर है। नन्हे से श्रीमान् और बड़ी सी श्रीमती का जोड़ा ठीक ऊँट-बैल का जोड़ा बन जाता है-पति देवको तो किसी तरह का पता नहीं है वहतो श्रीमती के आगे लट्टू घुमाता है और खिल खिलाकर हँस देता है। हाँ अब रही बिचारी

श्रीमती, वह तो तारे गिन-गिनकर रातें गुज़ारती है-अपने माता पिता सास ससुर के साथ अपने फूटे भाग्य को कोसती है और दिन रात चलते फिरते उठते बैठते लंबे—लंबे साँस ले-लेकर अपनी जीवन यात्रा समाप्त कर देती है—ये पाशविक अत्याचार "छोटी बहूके छोटे भाग्य बड़ी बहूके बड़े भाग्य" के बर्बर सिद्धान्त के बलसे कियेजाते हैं। पाठको! ये ही अनमेल विवाह नहीं है। अनमेल विवाह का क्षेत्र बहुत लंबा चौड़ा है—पठित, अपठित,-विकृत, अविकृत, शान्त, उग्र,-धर्मिष्ठ, अधर्मिष्ठ,-ये सबके सब अनमेल विवाह हैं। पूर्वोक्त अनमेल पति और पत्नी अपना सुख पूर्वक जीवन नहीं बिता सके। अनमेल विवाह मे पति और पत्नी में पुर्व—पश्चिम का सा अन्तर होजाता है। यही कारण है कि—आज कल के गृहस्थों के घर—घर नहीं रहते बल्कि पक्के रणक्षेत्र बने रहते हैं।

२—वृद्ध विवाह—वृद्ध विवाह अनमेल विवाह के ही अन्दर आजाता है फिरभी इसकी भयंकरता के कारण इसको अलग रक्खा गया है। अफ़सोस! अफ़सोस!! बड़ाभारी अफ़सोस!!! माता पिता कहलाने वाले आदमी लालच मे आकर अपनी

अनमोल पुत्रियों को बूढे बघेरों के पञ्जे में फँसा देते हैं। ऐसे माता पिता कसाइयों से भी गये गुज़रे हैं। कसाई तो सिर्फ़ पशु का ही माँस बेचता है पर ये तो चोड़े धाड़े मनुष्य देहधारी अपने बच्चों का ज़िन्दा माँस बेचते हैं।

प्यारे पाठको! तुमही कहो इन दोनों में कौन छोटा-बड़ा है? वृद्ध बाबा-चाँदीराम के ज़रिये बेटों को बहू बना लेते हैं क्या कहें—चाँदी चाँदी है दुनिया इसकी बाँदी है। चाँदी असंभव को संभव बना देती है। हा हन्त! अपने चाँदी से सफ़ेद सर पर सुनहरी मोड़ रखते हुए इन बुड्ढों को ज़रा भी शर्म नहीं आती। दाढी मूँछ के मुँडाते ही ये बुड्ढे महाशय झट-पट समझ लेते हैं कि गई गँवाई जवानी फिर वापिस आगई। खेद है—ये विधि के ठोकर मारने वाले नये नौजवान ब्याह के कुछही दिनों बाद जल्दी-जल्दी गृहस्था-श्रम के नये सुखों को भोग-भोग कर खुद तो सदा के लिये यमराज के महमान होजाते हैं और अभागे समाज की छाती पर अबोध बालिका को विधवा के रूपमें बैठा जाते हैं। जो बालिका पहली मर्दुमशुमारी में दूध मुँही लिखी गई थी वही अपने लालची माता पिताओं की कृपा से दश वर्ष बाद

विधवा लिखी आरही है हन्त! हन्त!!हन्त!!! इससे बढ़कर और क्या हिंसा होगी, न मालुम कब भारत से इस पैशाचिक हिंसा का अन्त होगा। एक कीड़ी की दया पालने वाले दया धर्मी इस तरह स्त्रीहत्या का पाप अपने सरपे लेते हैं।

४--मोसर--मोसर की भी भगवान् की तरह प्रायः सब जगह उपासना की जाती है। इसके भी भगवान की ही तरह नुक्ता काज, मृत भोज, आदि अनेक नाम हैं। भगवान् की तरह इस की भी अमीर--गरीब सब बिना किसी भेद भावके आराधना करते हैं। हां, फर्क सिर्फ इतना ही रह जाता है कि भगवान तो दुःख में सुख के करने वाले हैं और यह मोसर जी महाराज दुःख मे दुःख के करने वाले हैं। गज़ब-एक तो अपने आदमी के मरजाने का दुःख दूसरा बड़े कष्ट से पैदा किये धनके लुटाने का दुःख। बहुत से भाई तो बिरादरी के भय के कारण नाक कटने के डर से ही अपने पास ज़हर खाने का काणी कोड़ी तक नहीं होनेपर भी इधर उधर से क़र्ज़ कढा कढ़ाकर अपनी नाक बचाते हैं-अपनी मान मर्यादा बचाते हैं धिक्कार ऐसे नाक काटने वाले समाज पर और साथही धिक्कार ऐसी नाक की रक्षाकरने वाली नपुंसक जनता पर। कई प्रान्त

में तो फिर भी खैर है जो बुड्ढे के मरने पर ही मोसर करते हैं लेकिन मोसर भगवान् की ज़्यादह लीला देखनी हो तो कट्टर आस्तिक जयपुर, मारवाड़ जैसे प्रान्त की यात्रा करिये वहाँ पर आपको साक्षात् मोसर भगवान् की सोलह कलाओं के दर्शन हो जायँगे। क्यों कि वहाँ सतरह-सतरह, अठारह-अठारह वर्ष के नौजवान लड़कों के मरने पर मोसर किया जाता है— एक तरफ़ बिचारी नवयुवती विधवा अपने पतिदेव को और अपने पर आने वाले भावी दुःखों को याद कर कर के कोठे में पड़ी हुयी औंधे मुँह सिसक-सिसक कर रो रही है दूसरी तरफ़ बुढ़िया माता अपने नौनिहाल लालकी मिल मिले बार बार पुकार बात याद करके रोती हुयी धरती पर सर पटक कर मारती है छाती कूटती है कभी २ बेहोश होकर आपभी पुत्र के पीछे २ चलने की तय्यारी करने लग जाती है। लेकिन धन्यवाद है तीसरी तरफ़ पलोथा मार कर बैठे हुये पत्थर सी छाती वाले पिंडी-शूर महाशयों को जो आनंद के साथ गपा गप्प सूल भर लड्डू खारहे हैं पेट पर हाथ फेर २ कर भोजन की अधिकता के कारण उथल पुथल होरहे हैं तथापि हूँ हूँ के अव्यक्त नादसे भोजनार्थ आगे बढ़ने के लिये एक दूसरे को आपस में उकसा रहे हैं

छीं छीं छीं परमात्मा जाने इन पेटु महानुभावों का कैसा दिल है जो ऐसे दारुण दुःख में भी तनिक नहीं हिलता अहो! हिलें क्यों यह तो पक्के अहिंसा वादी जीव ठहरे ना।

५—ब्याह में फिज़ूल खर्ची— फिज़ूल खर्ची का भारत में बड़ा ज़ोर शोर है। जहाँ देखो वहीं बात बातमें फिज़ूल खर्ची। फिज़ूल खर्ची के मारे भारत का नाक में दम आचुका है। जिस देश के करोड़ों मनुष्यों को दो दिन की फ़ाक़ा कसी के बाद तीसरे दिन एक दफे वहभी अध पेटही भोजन मिले फिर उसी देश के कुछ दिवाग पर के ईंत्र धनवान फिज़ूल खर्ची करें कैसी लज्जाकी बात है? प्रिय पाठको! यों तो भारत में अनेक तरह की फिज़ूल खर्ची चली हुयी है लेकिन सबसे अधिक फिज़ूल खर्ची ब्याहों में की जाती है। जिन माता पिता-ओं का जिस पुत्र के पढ़ाने के लिये कार्णी कौड़ी खर्च करते भी जी निकलने लग जाता था वही माता पिता उसी सुपुत्र की शादी में कुछ देरकी वाह वाही के लिये चौड़ी छाती कर के दोनों हाथों से प्राण प्यारे पैसे को लुटाते हैं। क्यो नहीं माँ बाप का फ़र्ज़ ही ऐसा है? अक़्ल मन्दी इसे ही कहते हैं? क्या कहना है? भारत में बेटे वाला दूसरा ईश्वर बनजाता है। वह

बेटी वाले को नीच समझता है। बेटे वाला कलंदर बनके बेटी वाले को बंदर बनाके नचाता है—मोटर साइकिल, रथ, घोड़ा गाड़ी आदि चीज़ें लेने का पहले ठोक ठोक कर वादा करता है? वादा क्या करता है यों कहना चाहिये इन चीज़ों पर लड़के को बेचता है। हाँ, यही कारण है कि एक भारतीय घर में लड़की के पैदा होते ही रोना पड़जाता है- मातम छाजाता है-गृहपति समझ लेता है कि अब इज़्ज़त रहनी बहुत मुशकिल है। न मालूम कौन से खोटे कर्म का उदय हुवा जो मेरे यह कम्बख्त लड़की पैदा होगई। अस्तु प्रतिपाद्य विषय पर चलिये भारत में भूखों की फ़ौज का नाम बरात रक्खा गया है। यह भूखों की फ़ौज बेटे वाले की तरफ से अपने पुत्र के विवाह समय पर बेटी वाले पर चढ़ाई जाती है। यह फ़ौज जितनी ही ज़्यादह होती है उतनी ही बेटे वाले की तारीफ़ होती है इसी तारीफ़ के वहम में बाज़ मोके ज़िद में आकर बेटे वाला खुद लुटजाता है और साथही बेटी वाले को भी लुटा देता है। पाठको! इस फ़ौज के विषय में मैं क्या लिखूँ मैं तो एक साधु हूँ मेरे जैसों को तो इन बातों का कुछ सुना सुनाया मामूली सा ही पता होता है। हाँ, आपको इस फ़ौज के विषय में बहुत कुछ पता होगा—

अरे! पता क्यों आपभी तो बहुतसी दफ़े इस फ़ौज के सिपाहि हुये होंगे आपभी तो कई दफ़े फ़ौजी सिपाहियों के साथ साथ लाल पीली आँखें निकाल निकाल कर दूध लावो-चाय लावो ठंडाई लावो-पान लावो-तमाखू लावो-हुक्का लावो-का कोलाहल मचाते हुये बिचारे बेटी वाले की छाती पर जा चढ़े होंगे। एक क्या भारतीय विवाह में सैकड़ों अड्डे होते हैं कहीं बाग़ बाड़ी लुटाई जाती है तो कहीं मंगला नहीं नहीं अमंगलामुखी नचाई जाती हैं। कहीं स्त्री वेष धारी मंडे मुसंडे लौंडे नचाये जातेहैं तो कहीं नक्कालों की फटाफट फट फटाफट फट तालियां बजाई जाती हैं। कि बहुना- जिधर देखो उधर ही अँधा-धुंध आँधी चलती हुई दिखाई देरहीहै प्यारे पाठको! इस आँधी में पूंजी पति (धनवान) तो जैसे तैसे कंगाल वंगाल न बनाकर काम निकाल लेते हैं लेकिन दया आती है उन ग़रीबों पर जो पहले ही थोथे ढोल हैं फिर भी समाज के डर में क़र्ज़ कढ़ाकर इस आँधी में उड़ते हैं और फिर ब्याह होने के कुछ ही दिनों बाद वारंट — गिरफ्तारी — जेल- कुर्की हाट हवेली निलाम हो डुबाकर अन्त में सारी तरह हा! हा!! हा!!! करते हुए मिट्टी में मिलजाते हैं।

प्यारे पाठको! अधिक कहने से क्या इत्यादि जितनी भी कुप्रथाएँ समाज में चली हुयी हैं सबकी सब हिंसा में दाखिल होती हैं अतः अहिंसा वादी लोगों को चाहिए कि इन कुप्रथाओं का शीघ्र से शीघ्र अन्त करके समाज को सुखी बनाएँ

—:o:—

१० अहिंसावादी को क्या-क्या करना चाहिए?

—:o:—

प्रिय पाठको! अब आपकी यह पुस्तक समाप्त हो रही है। परन्तु—खेद है कि—समया भाव के कारण अहिंसा पर जैसा लिखना चाहिये था वैसा नहीं लिख सका। समय मिला तो फिर कभी स्वतंत्रता के साथ लिखूँगा। अबतो आप जो कुछ लिखा है इसीपर संतोष करें। हाँ, कुछ अत्यन्त उपयोगी विषयों पर तो थोड़ा बहुत समास करते हुये भी लिख देता हूँ:—

१—अहिंसावादी को प्रति दिन परमपिता परमात्मा की उपासना अवश्य करनी चाहिए । बिना ईश्वर की उपासना किये मनुष्य में अहिंसा पालन करने का पूरा-पूरा बल नहीं आसकता । जो मनुष्य ईश्वरोपासना करता है वह घन घोर संकट में भी सुमेरु के समान अटल-अचल रहता है । परन्तु साथही यहभी याद रखना चाहिए कि—उपासना सच्ची उपासना होनी चाहिये-सच्ची उपासना से ही उपासक ऊपर की ओर उठ सकता है अन्यथा नहीं ।

२ अहिंसावादी को अपंग, रोगी, बुभुक्षित आदि दीन-हीन प्राणियों की सच्ची लगन से सेवा करनी चाहिये । क्योंकि सच्चा अहिंसा वादी वही बनसकता है-जो अपने कानों को दुखियों की पुकार सुन ने के लिये हमेशां खुला रखता है-जो अपने तन मन धन को दुःखितों की रक्षा के लिये स्वाहा कर देता है-जो अपने "मित्ती मे सव्व भूयेसु" के व्यापक प्रण से कभी तिल मात्र भी विचलित नहीं होता है । मित्रो! दुखियों की सेवा करनेका फल कोई मामूली फल नहीं है इसके लिये तो एक समय गणधर गौतम जी के प्रश्न के उत्तर में भगवान् महावीर स्वामी ने खुद कहा था

"जे गिलाणं पडियरइ से धन्ने" यानी रोगी आदि की सेवा करनेवाला मनुष्य मेरी सेवा करने वाले मनुष्य से कहीं अधिक श्रेष्ठ है। धन्य! महावीर धन्य!

३—अहिंसा वादी की भावना शरच्चन्द्र के समान स्वच्छ सुन्दर और सुधामय होनी चाहिए। क्यों कि अहिंसा धर्म का तमाम दारोमदार शुद्ध भावना पर ही अवलम्बित है। जिस मनुष्य की जितनी अधिक स्वच्छ और विशाल भावना होगी उतना ही वह अहिंसा धर्म पर सुदृढ़ रह सकेगा अब अहिंसा वादी की कैसी भावना हो? और उस भावना में ईश्वर से कैसी प्रार्थना हो? इसके लिये नीचे पढ़िए:--

---

दयामय! ऐसी मती होजाय।

त्रिभुवन की कल्याण कामना, दिन दिन बढ़ती जाय ।टेक।

औरों के सुख को सुख समझूं, सुख का करूं उपाय।

अपने सब दुःखों को सहलूं, पर दुःख सहा न जाय ॥१॥

भूला भटका उल्टी मति का, जो है जन समुदाय।

उसे दिखाऊँ सच्चा सत्पथ, निज सर्वस्व लगाय ॥२॥

शुभमस्तु सर्व जगतः, परहित निरता भवन्तु भूत गणाः॥

दोषाः प्रयान्तु नाशं, सर्वत्र सुखी भवतु लोकः॥

ओ३म् शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

११-जैनी अहिंसा पर अजैन विद्वानोंकी सम्मतियाँ

१—महात्मा गांधीजी ।

मैं आप लोगों से यक़ीन के साथ यह बात कहूँगा कि महावीर स्वामी का नाम किसी भी असूल के लिये पूजा जाता है तो वह अहिंसा है। अहिंसा के असूलको अगर किसी ने भी ज़्यादह से ज़्यादह रोशन किया है तो वह भगवान् महावीर स्वामी ही थे।

२—श्री लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ।

१ श्रीमान महाराज गायकवाड़ (बड़ोदा नरेश) ने पहले दिन कॉन्फ्रेंस में जिस प्रकार से कहा था उसी प्रकार "अहिंसा परमो धर्मः,, इस उदार सिद्धान्त ने ब्राह्मण धर्म पर चिरस्मरणीय छाप मारी है। पूर्व काल में यज्ञ के लिये असंख्य पशु हिंसा होती थी इस के प्रमाण मेघदूत काव्य आदि अनेक ग्रन्थों में मिलते हैं ………… परन्तु इस घोर हिंसा का ब्राह्मण धर्म से विदाई ले जाने का श्रेय (पुण्य) जैन धर्म के हिस्से में है।

२ – ब्राह्मण धर्म को जैन धर्म ही ने अहिंसा धर्म बनाया।

३—ब्राह्मण व हिंदु धर्म में जैन धर्म के ही प्रताप से मांस भक्षण व मदिरा पान बन्द हो गया।

४ ब्राह्मण धर्म पर जो जैन धर्म ने अक्षुण्ण छाप मारी है उसका यश जैन धर्म ही के योग्य है। जैन धर्म में अहिंसा सिद्धान्त प्रारंभ से है, और इस तत्व को समझने की त्रुटि के कारण बौद्ध धर्म अपने अनुयायी चीनियों के रूप में सर्वभक्षी होगया है।

३—हिन्दी नवजीवन संपादक।

मैं जैन धर्म के अहिंसा सिद्धान्त का ज्ञाता होने का दावा तो नहीं कर सकता पर इतना मुझे मालूम है कि यदि अहिंसा धर्म ने सिद्धान्त का स्वरूप किसी भी संप्रदाय में धारण किया है तो वह जैन धर्म में ही है और तत्कालीन मनुष्य-समाज में पाई जाने वाली कमज़ोरियों को ध्यान में रख कर अहिंसा के ऊँचे आदर्श तक पहुँचने के लिये जैनाचार्यों ने सीढ़ियाँ बनादी हैं

४—भारत भक्त श्री एण्ड्रूज।

१—यही प्राचीन कालसे प्रचलित जैन धर्म की शिक्षा ने महात्मा गांधी जी के विचारों को पुष्ट करदिया है।

२—महात्माजी ने जैनशास्त्रों का अध्ययन किया है जहाँ अहिंसा सिद्धान्त को विशेष महत्व दिया गया है। मैंने स्वयं उनको देखा है कि वह अपनी एक घोर अवस्था में एक जैन शास्त्र का अध्ययन दिन प्रति दिन किया करते थे।

३—जैन सिद्धान्त का अध्ययन कर महात्मा जीने संसार को उस अमोघ आत्मबल का स्वरूप समझाया है जिसको वह हेय समझताथा।

५—इटालियन विद्वान डॉ० एल. पी. टेसीटोरी—

जैन दर्शन बहुत ही ऊँची पंक्ति का है। इस के मुख्यतत्व विज्ञान शास्त्र के आधार पर रचे हुये हैं। ज्यों ज्यों पदार्थ विज्ञान आगे बढ़ता जाता है, जैन धर्म के सिद्धान्तों को सिद्ध करता है। अहिंसा सभ्यता का सर्वोपरि और सर्वोत्कृष्ट दरज़ा है।

यह निर्विवाद सिद्धहै और जबकि वह सर्वोपरि और सर्वोत्कृष्ट दरज़ा जैन धर्म का मूल है तो इसकी और सर्वाङ्ग सुन्दरता के साथ यह कितना पवित्र होगा यह आप खुद ही समझ सकते हैं जैनी लोग अहिंसा देवी के पूर्णउपासक होते हैं

और उनके आचार विचार बहुत शुद्ध और प्रशंसनीय होते हैं उनके व्रत और सप्तव्यसन वगैरह बाबतों के ज्ञान ने मे मुझे बहुत खुशी हुई और उनके चारित्र की तरफ मेरे दिल में बहुत आदर उत्पन्न हुवा है मैं इस निश्चय पर आ पहुँचा हूं कि मैं भी जहांतक बने जैन धर्म के मुख्य नियमों के अनुसार चलूं ।

